श्रीः ।

आत्मबोधः ।

पूज्यपादश्रीमच्छङ्कराचार्यप्रणीतः ।

पण्डितरामस्वरूपशर्म्मणा प्रणीतया

सान्वय-भाषाटीकया सहितः ।

शास्त्रि अनंतशर्मणा संशोधितश्च ।

सोऽयम्

हरिप्रसादात्मज व्रजवल्लभशर्मणा

मुम्बापुर्यां

'नेटिव्ह ओपिनियन' मुद्रणालयेऽङ्कयित्वा प्राकाश्यं नीतः।

शकाब्दाः १८३८, संवदब्दाः १९७२

इस ग्रंथका सब अधिकार प्रकाशकने स्वाधीन रक्खा है.

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

भूमिका ।

हंहो ! आत्मतत्त्वबुभुत्सवो मुमुक्षवः ! इह खलु विधानचतुष्टयान्वितपुरुषार्थेषु निखिलदुरूहदुःखनिवर्त्तकत्वेन निरतिशयानन्दरूपात्मकत्वेन च मोक्ष एव परमपुरुषार्थ इति श्रुतिस्मृतिपुराणयुक्त्यनुभवासिद्धम् । स च वेदान्तैकवेद्याशनायाद्यतीतापेक्षब्रह्मक्षत्रादिभेदासंसारिब्रह्मात्मैकत्वनिश्चयसाध्योऽतो नरानुपचिकीर्षुणा पूज्यपादश्रीमच्छङ्कराचार्येण अद्वैतब्रह्मात्मैकत्वप्रतिपादकं शारीरकभाष्यादिपुरुषायुषेणापि दुर्विज्ञेयमिति विलोच्येदं आत्मबोधाभिधं प्रकरणं प्रणायि । तदेतदपि गम्भीरार्थकतयाऽनायासेन नार्थबोधकृदिति मत्वा मुम्बापुरीस्थ–श्रीयुत–भगीरथात्मज-हरिप्रसादाभिधैर्भाषारसिकाबालवृद्धसाधारणेन रूपानिमभिलक्ष्य सान्वयभाषाविवृतये प्रार्थितेन मयाऽनायासेनैव सर्वजनहृदयङ्गमं भाषाविवरणं व्यरचि । तदेतान्निरीक्षणातद्दृष्ट्याऽऽश्यन्तु प्रवीणा इति प्रार्थये ।

मुरादाबादनिवासी,
काशीस्थराजकीयप्रधानपाठशालापरीक्षोत्तीर्ण-
पण्डित-रामस्वरूपशर्मा ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

श्रीगणेशाय नमः ।

आत्मबोधः ।

सान्वय-भाषानुवादसमलंकृतः ।

श्रीयुतपूज्यपादस्वामिरामभिश्रशास्त्रिभ्यो गुरुभ्यो नमः ।

यस्य नाभेरन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समजायत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तस्मै चिद्ब्रह्मणे नमः ॥ १ ॥
यस्मात्त्रयी समुद्भूता यस्माल्लोकाश्च जज्ञिरे ।
प्रलये यत्र लीयन्ते तस्मै चिद्ब्रह्मणे नमः ॥ २ ॥
नमस्तस्मै सदैकस्मै कस्मैचिन्महसे नमः ।
यदेतद्विश्वरूपेण भ्राजते चिन्मयोऽमलः ॥ ३ ॥
यद्रूपं हि जगत्सर्वं यद्विना नैव किञ्चन ।
तन्नत्वास्याऽऽत्मबोधस्य भाषां कुर्वेऽन्वयाश्रिताम् ॥ ४ ॥

परमकृपालु पूज्यपाद भगवान् श्रीशङ्कराचार्यजीने शारीरक, उपनिषद् व गीता आदि वेदान्तग्रन्थोंका

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

विचार करनेमें असमर्थ मुमुक्षु पुरुषोंके हितके निमित्त सम्पूर्ण वेदान्तका सारभूत आत्मज्ञानका बोधक जो यह **आत्मबोध** नामक ग्रन्थ निर्माण किया, उसका यह प्रथम श्लोक है—

तपोभिः क्षीणपापानां शान्तानां वीतरागिणाम् ।
मुमुक्षूणामपेक्षोऽयमात्मबोधो विधीयते ॥ १ ॥

अन्वयः—तपोभिः क्षीणपापानाम्, शान्तानाम्, वीरागिणाम्, मुमुक्षूणाम्, अपेक्षः, अयम्, आत्मबोधः, विधीयते ॥ १ ॥

अर्थः—कृच्छ्रचान्द्रायण-आदि व्रत और सन्ध्या-वन्दन-आदि नित्य नैमित्तिक कर्म तथा भगवत्-आराधना-आदि उपसनारूप तपोंकरके जिनके पाप क्षीण हो गये हैं अर्थात् रागद्वेषादि अन्तःकरणके दोष जिनके दूर हो गये हैं ऐसे शान्त (क्षोभरहित) और वीतराग (जिनके इस लोक और परलोकके विषे विषयभोगकी लालसा नहीं हैं) तथा मुमक्षु (संसाररूपी बन्धनसे मुक्त होनेकी

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इच्छा करनेवाले) पुरुषोंको आत्मज्ञानकी प्राप्ति होनेके निमित्त यह आत्मबोध प्रकरण रचा जाता है ॥ १ ॥

शङ्का—वेद और शास्त्रोंके विषे तौ तप-मंत्र-जप-यज्ञादि कर्म तथा योगसाधन और काशीवास आदि अनेक प्रकारके साधनोंकरके मोक्षकी प्राप्ति कही है; फिर केवल आत्मज्ञान होनेसे वही मोक्षका साधन है, यह किसप्रकार यथार्थ होजायगा ?

समाधान—" तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय " इत्यादि श्रुतियोंके प्रमाणसे साक्षात् आत्मज्ञानही मोक्षका कारण सिद्ध होता है; और यज्ञादि कर्म तथा चान्द्रायण-आदि व्रत और भगवान्‌के साकार रूपकी उपासना आदि तौ अन्तःकरणकी शुद्धिमात्रके ही साधन हैं, मोक्षके कारण नहीं हैं. इसकारण ही हमने केवल आत्मबोधको मोक्षका साधन कहा है. इस विषयको ही सिद्ध करतेहुए ग्रन्थकार दृष्टान्त लिखते हैं कि—

बोधोऽन्यसाधनेभ्यो हि साक्षान्मोक्षैकसाधनम् ।
पाकस्य वह्निवज्ज्ञानं विना मोक्षो न सिद्ध्यति ॥ २ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अन्वयः—हि—अन्यसाधनेभ्यः, बोधः, पाकस्य वह्निवत्, साक्षात्, मोक्षैकसाधनम् । यतः, ज्ञानं विना, मोक्षः, न, सिद्ध्यति ॥ २ ॥

अर्थः—यज्ञ, व्रत-उपासना आदि जो अनेक साधन हैं, उनमें केवल एक आत्मज्ञान ही मोक्षकी प्राप्तिका मुख्य उपाय है. जिसप्रकार अन्नआदिका भोजन बनानेमें पात्र-काष्ठ-जल-आदि अनेक वस्तुओंकी आवश्यकता होती है; परन्तु प्रधानकारण अग्नि ही है, क्योंकि—यदि सम्पूर्ण सामग्री हो और एक अग्नि नहीं हो तौ भोजन नहीं बन सकता है. इसीप्रकार मन्त्र—जप आदि अन्य साधनोंके होनेपर भी आत्मज्ञान हुएबिना मोक्षकी प्राप्ति कदापि नहीं हो सकती है. वही श्रुतियोंमें भी कहा है कि "ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः—ज्ञानसे रहित पुरुषकी मुक्ति नहीं होती है" और "ज्ञानादेव तु कैवल्यम्—ज्ञानसेही कैवल्यपदकी प्राप्ति होती है" तथा "ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः—आत्मदेवको जानकर ही सम्पूर्ण बन्धनोंसे मुक्ति होती है" ॥ २ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तहाँ शङ्का होती है कि—कर्मोंकी भी अद्भुत शक्ति है. क्योंकि—राजा जनक आदि तौ कर्मोंके द्वारा ही संसिद्धिको प्राप्त होगये; इसकारण कर्मोंके द्वारा ही अज्ञानका नाश होकर मोक्षकी प्राप्ति हो जायगी. ज्ञानसे ही अज्ञानका नाश होता है, यह कथन सङ्गत नहीं प्रतीत होता. क्योंकि—जो पदार्थ जिसका विरोधी नहीं होता, वह उसका नाश भी नहीं कर सकता है. इसकारण—

अविरोधितया कर्म नाविद्यां विनिवर्तयेत् ।
विद्याऽविद्यां निहन्त्येव तेजस्तिमिरसङ्घवत् ॥ ३ ॥

अन्वयः—कर्म, अविरोधितया, अविद्याम्, न विनिवर्तयेत्। तेजः, तिमिरसंघवत्, विद्या, अविद्याम् निहन्ति, एव ॥ ३ ॥

अर्थः—कर्म, अविरोधी होनेके कारण अविद्याके दूर करनेमें समर्थ नहीं है, अर्थात् कर्म और अविद्या (अज्ञान) इन दोनोंका परस्पर कोई विरोध नहीं है. क्योंकि—ये दोनों जड़ हैं. इस कारण, कर्म कदापि अविद्याको दूर

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

नहीं कर सकता है; परन्तु जिसप्रकार तेज और अन्धकारका विरोध होता है, और तेज अन्धकारको नष्ट कर देता है उसीप्रकार विद्या अर्थात् 'मैं नित्यशुद्ध बुद्धमुक्तस्वरूप ब्रह्म हूँ' इसप्रकार ब्रह्म और जीवात्माकी एकताके ज्ञान और अविद्या अर्थात् 'मैं मनुष्य हूँ, दुःखी हूँ, सुखी हूँ' इत्याकारक अज्ञानका विरोध है, इसकारण विद्या जो ज्ञान सो अविद्या अर्थात् अज्ञानको नष्ट कर देती है ॥ ३ ॥

तहाँ शङ्का होती है कि—आत्मा तो प्रतिशरीरमें परिच्छिन्न अर्थात् जन्मसे नाशवान् प्रतीत होता है, फिर 'जीव-ब्रह्मकी एकताके ज्ञानसे अज्ञानकी निवृत्ति होती है,' यह कहना किसप्रकार बनेगा? तहाँ कहते हैं कि—

परिच्छिन्न इवाज्ञानात्तन्नाशे सति केवलः ।
स्वयं प्रकाशते ह्यात्मा मेघापायेंऽशुमानिव ॥ ४ ॥

अन्वयः—आत्मा, अज्ञानात्, परिच्छिन्नः इव, (भाति)। तन्नाशे सति, मेघापाये, अंशुमान् इव, केवलः, स्वयम्, हि, प्रकाशते ॥ ४ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अर्थः—सर्वव्यापक अद्वितीय आत्मा यद्यपि अज्ञान-करके कल्पित देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, आदि ऊंच-नीच शरीरोंके अध्याससे (भ्रमकरके) परिच्छिन्न अर्थात् एकदेशीसा प्रतीत होता है; परन्तु जब "तत्त्वमसि", आदि महावाक्योंके द्वारा आत्मा और ब्रह्मकी अभिन्नताका ज्ञान होता है, तब अज्ञानकल्पित मिथ्या अध्यास नष्ट हो जाता है. किन्तु, केवल सजातीय विजातीय और स्वगत भेदशून आत्माही प्रकाशित होता है. तहां दृष्टान्त देते हैं कि—जिसप्रकार मेघरूप आवरणके दूर होनेसे निर्मल सूर्य प्रकाशित होता है, उसीप्रकार अज्ञान-रूप आवरणके दूर होनेपर अद्वितीय स्वयंप्रकाशरूप आत्मा प्रकाशित होता है ॥ ४ ॥

तहाँ शङ्का होती है कि—"अज्ञानके नष्ट होनेसे जो आत्माके अद्वितीय ज्ञानका प्रतिपादन किया सो तौ नहीं हो सकता; क्योंकि, अज्ञानकी नाश करनेवाली वृत्तिका ज्ञान होनेसे तौ द्वैत सिद्ध होजायगा ?" इस शंकाका समाधान करते हैं कि—

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अज्ञानकलुषं जीवं ज्ञानाभ्यासाद्धि निर्मलम् ॥
कृत्वा ज्ञानं स्वयं नश्येज्जलं कतकरेणुवत् ॥ ५ ॥

अन्वयः—अज्ञानकलुषम्, जीवम्, हि, ज्ञानाभ्यासात्, निर्मलम्, कृत्वा, जलम्, (निर्मलम्, कृत्वा), कतकरेणुवत्, ज्ञानम्, स्वयम्, नश्येत् ॥ ५ ॥

अर्थः–जिसप्रकार निर्मली मलिन जलकी मलिनताके समूहको नष्ट करके पीछेसे अपने आप भी विनष्ट होजाती है, उसीप्रकार अकर्ता, अभोक्ता, सच्चिदानन्दस्वरूप भी 'मैं कर्ता हूँ, मैं भोक्ता हूँ, मैं जीव हूँ' इत्यादि अध्यास करके मलिन जो आत्मा उसके अज्ञानको 'मैं अकर्ता, अभोक्ता, सच्चिदानन्दस्वरूप, कूटस्थ, असंग, व साक्षी ब्रह्म हूँ,' यह ज्ञान नष्ट करके, स्वयं भी लीन हो जाता है, इसकारण द्वैतप्रतीति सर्वथा मिथ्या है ॥५॥

तहाँ शंका होती है कि:—जब प्रत्यक्ष दृश्यमान संसार सत्य प्रतीत होता है, तौ फिर ब्रह्मकी केवलता

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अर्थात् अद्वितीयता किसप्रकार सिद्ध होगी ? तहाँ कहते हैं कि—

संसारः स्वप्नतुल्यो हि रागद्वेषादिसंकुलः ।
स्वकाले सत्यवद्भाति प्रबोधे सत्यसद्भवेत् ॥ ६ ॥

अन्वयः—हि, रागद्वेषादिसंकुलः। संसारः, स्वप्नतुल्यः, स्वकाले, सत्यवत्, भाति; प्रबोधे साति, असत्, भवेत् ॥ ६ ॥

अर्थः—राग द्वेष आदि करके व्याप्त यह संसार स्वप्नके तुल्य मिथ्या है. क्योंकि, जैसे स्वप्नकालकी घटना केवल स्वप्नावस्थामें ही सत्यसी प्रतीत होती है और प्रबोध (जाग्रत्अवस्था) होनेपर उसकी असत्यता प्रतीत होजाती है, उसीप्रकार अज्ञानावस्थामें यह संसार सत्यसा प्रतीत होता है और जब तत्त्वज्ञान होजाता है, तब स्वयं मिथ्या प्रतीत होने लगता है; इसकारण, इस भ्रमकल्पित संसारकरके आत्माकी अद्वितीयतामें कोई हानि नहीं होती है ॥ ६ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तहाँ शंका होती है कि—जब वास्तविकमें संसार असत् है तौ उसकी सत्यवत् प्रतीति किसप्रकार होती है ? उसका समाधान करते हैं कि—

तावत्सत्यं जगद्भाति शुक्तिकारजतं यथा ।
यावन्न ज्ञायते ब्रह्म सर्वाधिष्ठानमद्वयम् ॥ ७ ॥

अन्वयः—यावत्, सर्वाधिष्ठानम्, अद्वयम्, ब्रह्म, न ज्ञायते। तावत् (एव), यथा, शुक्तिकारजतम्, (तथा), जगत्, सत्यम्, भाति ॥ ७ ॥

अर्थः—जिसप्रकार जबतक नीलपृष्ठ त्रिकोणरूप शुक्तिकाका वास्तविक ज्ञान नहीं होता है तबतकही उस शुक्तिकाके रूपमें कल्पित रजत सत्यसा प्रतीत होता है उसीप्रकार जबतक सर्वके अधिष्ठान अद्वितीय ब्रह्मका यथार्थरीतिसे ज्ञान नहीं होता, तबतक ही भ्रमकल्पित यह मिथ्याभूत प्रपञ्च सत्यसा प्रतीत होता है. ब्रह्मज्ञान होनेपर संसार स्वय असत्य प्रतीत होने लगता है ॥ ७ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इसकारण यह सम्पूर्ण जगत् सर्वाधिष्ठानस्वरूप ब्रह्मके विषे कल्पित है; इस विषयमें दृष्टान्त लिखते हैं कि-

सच्चिदात्मन्यनुस्यूते नित्ये विष्णौ प्रकल्पिताः ॥
व्यक्तयो विविधाः सर्वा हाटके कटकादिवत् ॥ ८ ॥

अन्वयः–सच्चिदात्मनि, अनुस्यूते, नित्ये, विष्णौ, सर्वाः, विविधाः, व्यक्तयः, हाटके, कटकादिवत् प्रकल्पिताः, (सन्ति) ॥ ८ ॥

अर्थः–जिसप्रकार एक सुवर्णके विषे ही कटक, कुण्डल, केयूरआदि अनेक प्रकारके आभूषण कल्पना किये जाते हैं, उसीप्रकार सच्चिदानन्दस्वरूप और अनुस्यूत अर्थात् अस्ति भाति प्रियरूप आत्माके विषे तथा नामरूपात्मक जगत्के विषे (मणियोंके विषे सूत्रकी समान) ओतप्रत (व्यापक), और नित्य अर्थात् त्रिकालमें सत्यस्वरूप जो सर्वव्यापक विष्णु भगवान् उसके विषे अर्थात् सर्वके उपादानभूत ब्रह्मके विषे देव, मनुष्य, पशु, कीट आदि नानाप्रकारकी व्यक्तियें माया करके

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कल्पित हैं. इसकारण जगत्की प्रतीति वाचारम्भणमात्र है, और सत्य तौ केवल ब्रह्महीं है. वही कहा भी है "वाचारम्भण विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्"॥८॥

तहाँ कहते हैं—यद्यपि प्रपञ्च मिथ्या है, परन्तु जीव-भेद तौ सत्य है, इसकारण अधिष्ठानरूप आत्माको अद्वितीय कहना कैसे हो सकै? उसका समाधान करते हैं कि

यथाकाशो हृषीकेशो नानोपाधिगतो विभुः ।
तद्भेदाद्भिन्नवद्भाति तन्नाशे सति केवलः ॥ ९ ॥

अन्वयः—यथा, नानोपाधिगतः, विभुः, आकाशः, तद्भेदात्, भिन्नवत्, भाति । तन्नाशे सति, केवलः, (भवति तथा-एव) हृषीकेशः, (अस्ति) ॥ ९ ॥

अर्थः—सर्वव्यापक आकाश जिसप्रकार घट, पट, मठ-आदि भिन्न भिन्न उपाधियोंको प्राप्त होकर घटाकाश मठाकाश आदि नामसे व्यवहार किया जाता है, और घटपटादि उपाधियोंका नाश होनेपर पूर्ववत् केवल एक आकाश पदार्थही रहता है, उसीप्रकार हृषीकेश (सर्व-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

व्यापक, इन्द्रियोंका नियन्ता) परमात्मा देवता मनुष्य आदि उपाधियोंको प्राप्त होकर, भिन्न २ रूप करके प्रतीत होता है; और जीव-ईश्वरके भेदकी प्रतीति होती है. परन्तु उन देवमनुष्यादिके नाश होनेपर केवल अद्वितीय असङ्ग ब्रह्म ही रहता है ॥ ९ ॥

तहां शङ्का होती है कि—जब 'मैं ब्राह्मण हूँ, मैं संन्यासी हूँ' इसप्रकार वर्ण—आश्रम-आदि नानाप्रकारके धर्मयुक्त आत्मा प्रतीत होता है, तौ फिर आत्मा असङ्ग किसप्रकार हो सकता है ? इसका समाधान करते हैं कि—

नानोपाधिवशादेव जातिनामाश्रमादयः ।
आत्मन्यारोपितास्तोये रसवर्णादिभेदवत् ॥ १० ॥

अन्वयः—नाना-उपाधिवशात् एव, तोये, रसवर्णादिभेदवत्, आत्मनि, जातिनामाश्रमादयः, आरोपिताः, (सन्ति) ॥ १० ॥

अर्थः—पूर्वोक्त नानाप्रकारकी देव-मनुष्यादि उपाधियोंकरके आत्मा और देहकी एकताका भ्रम होनेसे

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

शरीरके धर्म जो जाति-नाम-आश्रम आदि आत्माके विषे मान लिये हैं; वे सब अविद्या (अज्ञान) करके कल्पित हैं; वास्तवमें सत्य नहीं है. जिसप्रकार जल स्वभावसे मधुर और शुभ्र है, परन्तु कटु-कषाय-लवणादि तथा हरित-पीत-रक्तादिके संसर्गसे कटु-कषाय-हरित-पीत-रक्त आदि रूपवाला प्रतीत होने लगता है, परंतु वास्तवमें जल कटु, कषाय, हरित, पीत-आदि रूप नहीं होता; उसीप्रकार जाति-वर्ण-आश्रमके साथ एकता होनेसे आत्मा जातिवर्ण आश्रमवाला प्रतीत होता है; किन्तु वास्तवमें आत्मा अद्वितीय है ॥ १० ॥

अब अविद्याकल्पित तीन उपाधियोंका वर्णन करते हैं कि—

पञ्चीकृतमहाभूतसम्भवं कर्मसञ्चितम् ।
शरीरं सुखदुःखानां भोगायतनमुच्यते ॥ ११ ॥

अन्वयः—पञ्चीकृतमहाभूतसम्भवम्, कर्मसञ्चितम्, शरीरम्, सुखदुःखानाम्, भोगायतनम्, उच्यते ॥११॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अर्थः—पंचीकृत कहिये पंचीकरण कियेहुए जो पंच महाभूत अर्थात् पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश नामरूप जगत्के परिणामी अर्थात् उपादानकारण हैं उनसे है उत्पत्ति जिसकी और प्रारब्धकर्मोंकर के रचाहुआ तथा आत्माके सुख दुःख भोगनेका स्थान स्थूलशरीर कहा है. यह स्थूल शरीर आत्माकी उपाधि है ॥ ११ ॥

अब आत्माकी सूक्ष्मशरीररूप द्वितीय उपाधिका वर्णन करते हैं कि—

पञ्चप्राणमनोबुद्धिदशेन्द्रियसमन्वितम् ।
अपञ्चीकृतभूतोत्थं सूक्ष्माङ्गं भोगसाधनम् ॥१२॥

अन्वयः—पञ्चप्राणमनोबुद्धिदशेन्द्रियसमन्वितम्, अपञ्चीकृतभूतोत्थम्, सूक्ष्माङ्गम्, भोगसाधनम् (उच्यते)

अर्थः—प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान ये पाँच प्रकारके प्राण (वायु), और सङ्कल्पविकल्पात्मक अन्तःकरणकी वृत्तिरूप मन तथा निश्चयात्मक अन्तः-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

करणकी वृत्तिरूप जो बुद्धि और श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण, ये पाँच ज्ञानेन्द्रिय; और हस्त, चरण, मुख, गुदा, लिङ्ग, ये पाँच कर्मेन्द्रिय; इन सप्तदश १७ अवयवोंकरके युक्त और अपंचीकृत सूक्ष्म पञ्चमहाभूतोंका रचाहुआ सूक्ष्म शरीरभी जीवके सुखदुःख भोगनेका साधन है. इस सूक्ष्मशरीरको आत्माकी द्वितीय उपाधि कहते हैं ॥ १२ ॥

अब आत्माकी कारणशरीररूप तीसरी उपाधिका वर्णन करते हैं कि—

अनाद्यविद्याऽनिर्वाच्या कारणोपाधिरुच्यते ।
उपाधित्रितयादन्यमात्मानमवधारयेत् ॥ १३ ॥

अन्वयः—अनिर्वाच्य, अनाद्याविद्या, कारणोपाधिः, उच्यते; आत्मानम्, उपाधित्रितयात्, अन्यम्, अवधारयेत् ॥ १३ ॥

अर्थः—जो अविद्या अनादि है अर्थात् उत्पत्तिरहित है और अनिर्वचनीय अर्थात् सत्-असत्-रूपसे जिसका

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वर्णन नहीं हो सकता है; क्योंकि, यदि अविद्याको सत्‌रूप कहो तो वह ज्ञान करके नष्ट किसप्रकार होगी? और असत् कहो तो मायासे जगत्‌की उत्पत्ति नहीं हो सकेगी. इसकारण अविद्या (माया), अनिर्वचनीय है; और जो अविद्या कारण कहिये स्थूलसूक्ष्मशरीरकी उत्पत्तिका बीज है, वह अविद्या आत्माकी तृतीय उपाधि है. ये जो वर्णन की हुई स्थूल, सूक्ष्म और कारणरूप तीन उपाधियां हैं उनसे साक्षीरूप आत्मा इस प्रकार भिन्न है, जिसप्रकार घटका देखनेवाला घटसे भिन्न होता है ॥ १३ ॥

तहाँ शंका होती है कि—ऊपर जो आत्माको उपाधित्रयसे भिन्न वर्णन किया है, सो कहना ठीक नहीं प्रतीत होता है; क्योंकि—" स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः—अर्थात् वह एक पुरुष अन्नरसमय है" इस श्रुतिके अनुसार आत्मा अन्नमय कोशादिरूप प्रतीत होता है. इस शङ्काका समाधान करते हैं कि—

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पञ्चकोशादियोगेन तत्तन्मय इव स्थितः ।
शुद्धात्मा नीलवस्त्रादियोगेन स्फटिको यथा ॥१४॥

अन्वयः—यथा, स्फटिकः, नीलवस्त्रादियोगेन, तत्तन्मयः—इव, (भवति) ; तथा, शुद्धात्मा, पञ्चकोशादियोगेन (तत्तन्मयः—इव) स्थितः; (अस्ति) ॥१४॥

अर्थः—जिसप्रकार स्वभावसे शुद्ध (स्वच्छ) स्फटिक नील-पीत-रक्तवस्त्रादिके योगकरके नील पीत-वर्णसा प्रतीत होता है, वास्तवमें स्फटिकमणि नील पीत नहीं है; उसीप्रकार पंचकोश-आदिके योगसे अर्थात् पंचकोश आत्माकी एकरूपताके भ्रमकरके आत्मा कोशरूप प्रतीत होता है. जैसे अन्नके रससे जो उत्पन्न होता है, और अन्नके रससेही वृद्धिको प्राप्त होता है, तथा अन्नरूप पृथिवीमें ही लीन हो जाता है, वह अन्नमय कोश कहाता है. इस अन्नमय कोशके साथ जब आत्माकी एकताका भ्रम होता है, तब आत्मा 'मैं मनुष्य हूँ, मैं मोटा हूं' इत्यादि अन्नमय कोशरूप प्रतीत होने लगता है.

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

और पंच कर्मेन्द्रिय और पंच प्राण मिलकर प्राणमय द्वितीय कोश होता है. इस प्राणमय कोशके साथ जब आत्माकी एकताका भ्रम होता है, तब आत्मा 'मैं भूखा हूँ, मैं प्यासा हूँ' इत्यादि प्रकारसे प्राणमय कोशरूप प्रतीत होने लगता है. और पंच ज्ञानेन्द्रिय तथा मन मिलकर मनोमय तृतीय कोश होता है. इस मनोमय कोशके साथ जब आत्माकी एकताका भ्रम होता है, तब आत्मा 'देह मेरा है, गृह मेरा है, पुत्रादि मेरे हैं' इत्यादि रीतिसे मनोमय कोशरूप प्रतीत होता है. और पंच ज्ञानेन्द्रिय और बुद्धि मिलकर विज्ञानमय कोश होता है. इस विज्ञानमय कोशके साथ जब आत्माकी एकताका भ्रम होता है, तब आत्मा 'मैं ज्ञानी हूँ, मैं मूर्ख हूँ' इत्यादि विधिसे विज्ञानमय कोशरूप प्रतीत होने लगता है. और मलिन सत्व गुण है प्रधान जिसमें ऐसी जो कारणशरीरभूत–प्रियमोद--आदि वृत्तियोंसहित अविद्या वह आनन्दमय कोश होता है. इस आनन्दमय कोशके साथ जब आत्माकी एकताका भ्रम होता

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

है, तब आत्मा 'मैं सुखी हूँ' इसप्रकार आनन्दमय कोशरूप प्रतीत होने लगता है. वास्तवमें आत्मा पञ्च- कोश नहीं है, किन्तु आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप है. और श्रुति जो आत्माको अन्नरसमय कोशादिरूप प्रतिपादन करती है, सो श्रुतिका तात्पर्य अरुन्धतीन्यायकरके सूक्ष्मव- स्तुके दिखानेमें है, अर्थात् श्रुतिका अभिप्राय यह नहीं है कि–आत्मा पञ्चकोशरूप है, किन्तु वास्तविक दृष्टिसे श्रुतिका भी यही अभिप्राय है कि, आत्मा पञ्चकोशसे अतिरिक्त है. क्योंकि–आत्मा एक है, कोश अनेक हैं; आत्मा अविनाशी है, कोश विनाशी हैं; आत्मा संपूर्ण धर्मोंकरके अतिरिक्त है, कोश धर्मवाले हैं; सो आत्मा कोशरूप किसीप्रकार भी नहीं हो सकता ॥ १४ ॥

इसकारण यद्यपि आत्मा पञ्चकोशोंके साथ एक- ताके भ्रम करके पञ्चकोशरूप प्रतीत होता है, परन्तु वास्तवमें आत्माके विषे किसीप्रकारका भेद नहीं है, इस वार्ताको दृष्टान्तद्वारा सिद्ध करते हैं कि–

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वपुस्तुषादिभिः कोशैर्युक्तं युक्त्याऽवघाततः ।
आत्मानमन्तरं शुद्धं विविच्यात्तण्डुलं यथा ॥ १५ ॥

अन्वयः—यथा, तुषादिभिः, (युक्तम्), तण्डुलम्, वपुः, अवघाततः (तथा) कोशैः, युक्तम्, अन्तरम्, शुद्धम्, आत्मनम्, युक्त्या, विविच्यात् ॥ १५ ॥

अर्थः—जिसप्रकार भूसीआदि करके ढकाहुआ तण्डुलका वास्तविक स्वरूप भीतरसे शुक्ल और शुद्ध है और उसको कूटकर भूसीसे भिन्न कर लेते हैं, इसीप्रकार पञ्चकोशोंकरके युक्त (ढकाहुआ) भीतर शुद्धस्वरूप आत्माको ज्ञानी पुरुष युक्तिरूप विचार करके भिन्न कर लेते हैं. आत्माको पञ्चकोशोंसे भिन्न जाननेकी परिपाटी दिखाते हैं कि—यह अन्नमय कोशरूप देह कदापि आत्मा नहीं हो सकता. क्योंकि, यह अन्नमय कोशरूप देह मृत्तिका-जल-वायु आदि जड़ पदार्थोंकी समष्टिरूप है और अनित्य तथा अस्थायी पदार्थ है. इस समय है; और किसी समय नहीं था, और किसीसमय

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

नहीं होगा, इसकारण अविनाशी आत्मा अन्नमयकोशरूप नहीं हो सकता है; उसीप्रकार प्राणमय कोशरूपभी आत्मा नहीं है; क्योंकि, प्राणमय कोश भी अपञ्चीकृत पञ्चमहाभूतका कार्यरूप, वायु विशेषमात्र, जड़पदार्थ है. और आत्मा तो चेतनस्वरूप है. और मनोमय कोशको भी आत्मा नहीं कह सकते; क्योंकि, कामक्रोधादिकी प्रबलता होनेपर मनमें संकल्पविकल्परूप विकार उत्पन्न होते हैं. और आत्मा तौ निरीह तथा निर्विकार है. और विज्ञानमयकोशको भी आत्मा नहीं कह सकते; क्योंकि, विज्ञानमयकोश सत्वगुणका कार्य तथा परिणामी है. और आत्मा तौ सर्वदा एकरस है. तथा आनन्दमयकोश भी आत्मा नहीं हो सकता; क्योंकि, आनंदमय कोश समाधिकालमें विद्यमान नहीं रहता है अर्थात् लीन हो जाता है और अविद्यारूप वृत्तिवाला है, जड़ है; और आत्मा तौ सर्वदा ज्ञानघन, मायासे रहित और चैतन्यस्वरूप है; इसकारण पूर्वोक्त पञ्चकोशोंसे भिन्न और विपरीत लक्षणाक्रान्त अखण्ड चिदानन्दस्वरूप है ॥ १५ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

" आत्मा ब्रह्मरूप होनेके कारण सर्वत्र प्रतीत होना चाहिये; और वेदान्तशास्त्रमें भी आत्माको सर्वव्यापक वर्णन किया है, फिर आत्माकी सर्वत्र प्रतीति क्यों नहीं होती है ?" इस शंकाका समाधान करते हैं कि–

सदा सर्वगतोऽप्यात्मा न सर्वत्रावभासते ।
बुद्धावेवावभासेत स्वच्छेषु प्रतिबिम्बवत् ॥ १६ ॥

अन्वयः–सदा, सर्वगतः, अपि, आत्मा, सर्वत्र, न, अवभासते; स्वच्छेषु, प्रतिबिम्बवत्, बुद्धौ—एव, अवभासेत ॥ १६ ॥

अर्थः—यद्यपि आत्मा ब्रह्मरूपकरके सर्वव्यापक है, परन्तु सर्वत्र प्रतीत नहीं होता है; केवल बुद्धिके विषेही भासमान होता है अर्थात् अस्तिभाति-प्रियरूपकरके सदैव घटपटादि पदार्थोंमें अनुभवरूप आत्मा वर्तमान है, परन्तु ज्ञातारूप आत्मा रज-तमका कार्यभूत जो देहादि उसके विषे प्रतीत नहीं होता है; केवल सत्वगुणका कार्य जो स्वच्छ बुद्धि उसके विषेही प्रतीत होता है.

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

जैसे घट-पट-काच-आदि जो मृत्तिकाकार्य, उनमेंसे निर्मल जो काचका दर्पण उसमें ही मुखका प्रतिबिम्ब पड़ता है, अन्यत्र नहीं. और जैसे सूर्य अपनी किरणोंकरके सर्वत्र व्यापक होता है, परन्तु सूर्यका प्रतिबिम्ब केवल स्वच्छ जलमें ही पड़ता है; उसीप्रकार सर्वव्यापक भी आत्मा अन्यत्र मलिन पदार्थोंमें न प्रतीत होकर, केवल स्वच्छ-रूप बुद्धिमें ही प्रतीत होता है ॥ १६ ॥

देह इन्द्रियादिकेविषे वर्त्तमान भी आत्मा देह इन्द्रि-यादिसे भिन्न है, इस वार्त्ताको दृष्टान्तके द्वारा सिद्ध करते हैं कि—

देहेन्द्रियमनोबुद्धिप्रकृतिभ्यो विलक्षणम् ।
तद्वृत्तिसाक्षिणं विन्द्यादात्मानं राजवत्सदा ॥ १७ ॥

अन्वयः—आत्मानम्, सदा, राजवत्, देहेन्द्रियम-नोबुद्धिप्रकृतिभ्यः, विलक्षणम्, तद्वृत्तिसाक्षिणम्, वि-न्द्यात् ॥ १७ ॥

अर्थः—जिसप्रकार राजा, सम्पूर्ण प्रकृति (प्रजा)—ओंसे भिन्न, प्रजाओंके वर्तनका साक्षी, और तेजःपुञ्ज

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

व प्रताप-आदि गुणयुक्त होता है, उसीप्रकार देहेन्द्रियादि संघातके विषे वर्त्तमान आत्माको मायाके कार्य जो देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि उनसे भिन्न और देहकी वृत्ति वृद्धावस्थादि-नेत्रादि इन्द्रियोंकी वृत्ति रूपरसादि विषयोंको ग्रहण करना, मनकी वृत्ति संकल्पविकल्परूप, और बुद्धिकी वृत्ति निश्चय करना, और मायाकी वृत्ति जो आकाशादिरूपसे परिणत होना, इन संम्पूर्ण वृत्तियोंका साक्षी आत्माको जानना ॥ १७ ॥

तहाँ शंका होती है कि—"आत्माको जो सर्वके साक्षीरूपसे वर्णन किया सो नहीं हो सकता; क्योंकि, आत्मा तौ देहेन्द्रियादि संघातके विषे व्यवहार करनेवाला प्रतीत होता है, और जो साक्षी है वह तौ साक्ष्यपदार्थोंसे भिन्न होता है, और यहाँ तौ साक्ष्यपदार्थ जो देह-इन्द्रियादि तिनसे साक्षी जो आत्मा सो भिन्न नहीं है, इसकारण आत्माका साक्षीपना नहीं हो सकता." इस शंकाका समाधान करते हैं कि—

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

व्यापृतेष्विन्द्रियेष्वात्मा व्यापारीवाऽविवेकिनाम् ।
दृश्यतेऽभ्रेषु धावत्सु धावन्निव यथा शशी ॥ १८ ॥

अन्वयः—यथा, अभ्रेषु, धावत्सु, (सत्सु) शशी धावन्-इव दृश्यते; (तथा–एव), अविवेकिनाम् इन्द्रियेषु, व्यापृतेषु, आत्मा, व्यापारी, इव, (दृश्यते)॥१८॥

अर्थः—जिसप्रकार आकाशके विषे वायुके वेगसे मेघ चलते हैं तब अविचारी मूढ पुरुषोंको चन्द्रमा दौड़ता है ऐसी प्रतीति होती है; वास्तवमें चन्द्रमा नहीं दौड़ता है. उसीप्रकार इन्द्रियोंके व्यवहार करनेपर, गुरु-शास्त्रादिके उपदेशसे रहित अविचारी पुरुष आत्माको व्यवहार करनेवाला मानते हैं, वास्तवमें आत्मा व्यवहार करनेवाला नहीं होता है; इसकारण तत्त्ववेत्ता पुरुष इन्द्रियोंके व्यवहारोंको आत्माके व्यवहार मानते हैं ॥ १८ ॥

तहाँ शङ्का होती है कि–“देह इन्द्रियादिको जो व्यवहार करनेवाला कहा सो व्यवहार तौ चेतनताके विना नहीं होता है, इसकारण इन्द्रियोंमें चेतनताशक्ति भी

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

माननी पड़ेगी, और यदि इन्द्रियादिकोंमें चेतनाशक्ति मानी जायगी, तौ इन्द्रियादिकोंको आत्मस्वरूप मानना पड़ेगा." इस शंकाका समाधान करते हैं कि—

आत्मचैतन्यमाश्रित्य देहेन्द्रियमनोधियः ।
स्वकीयार्थेषु वर्त्तन्ते सूर्यालोकं यथा जनाः ॥ १९ ॥

अन्वयः—यथा, जनाः, सूर्यालोकम्, आश्रित्य, स्वकीयार्थेषु, वर्त्तन्ते, (तथा—एव) देहेन्द्रियमनोधियः, आत्मचैतन्यम् (आश्रित्य, स्वकीयार्थेषु, वर्त्तन्ते) ॥१९॥

अर्थः—जिसप्रकार सम्पूर्ण पुरुष सूर्यके प्रकाशके आश्रयसे अर्थात् सूर्यका प्रकाश होनेपर अपने २ व्यवहारोंको सिद्ध करनेके अर्थ प्रवृत्त होते हैं, उसीप्रकार चैतन्यस्वरूप आत्माके आश्रयसे देह—इंद्रियादिक अपने अपने अर्थके विषे अर्थात् अपने २ व्यवहारको सिद्ध करनेके अर्थ प्रवृत होते हैं. इसकारण देहइन्द्रियादिकमें स्वतः चेतनताशक्ति नहीं है, इसीकारण इन्द्रियादिकोंको आत्मता नहीं हो सकती ॥ १९ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

यद्यपि उपर्युक्त रीतिसे आत्मा चैतन्यस्वरूप सिद्ध हुआ, परन्तु 'मैं उत्पन्न होता हूँ, मैं मृत्युको प्राप्त होता हूँ, मैं बालक हूँ, मैं युवा हूँ, मैं काना हूँ, मैं बधिर हूँ, मैं देखता हूँ, मैं श्रवण करता हूँ' इत्यादि व्यवहारसे आत्मा जन्म-मरण स्वभाववाला प्रतीत होता है ? इस शङ्काका समाधान करते हैं कि—

देहेन्द्रियगुणाः कर्माण्यमले सच्चिदात्मनि
अध्यस्यन्त्यविवेकेन गगने नीलिमादिवत् ॥ २० ॥

अन्वयः—देहेन्द्रियगुणाः, कर्माणि, (च,) गगने, नीलिमादिवत्, अविवेकेन, अमले, सच्चिदात्मनि, अध्यस्यन्ति ॥ २० ॥

अर्थः—जिसप्रकार मूर्ख पुरुष रूपरहित भी आकाशके विषे अज्ञानकरके नील–पीत–आदि रंगोंका आरोप करते हैं, उसीप्रकार अमल कहिये मायामलरहित अर्थात् अज्ञानके कार्य जो देह--इन्द्रिय--नाम--रूप संसार है सोई हुआ मल उस मलकरके रहित जो सत्–चित्–आनन्दस्वरूप आत्मा उसके विषे

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अविवेकी पुरुष अज्ञानकरके देहको इन्द्रियादिके गुण (अन्धत्व–बधिरत्व–आदि) और कर्मों–(गमन–वचन–आदि) का मिथ्या आरोप (अध्यास) करते हैं; वास्तवमें आत्माके विषे जन्ममरणादि कोई धर्म नहीं हैं, यह जन्ममरणादि देहादिके होते हैं ॥ २० ॥

तहाँ कहते हैं कि–यद्यपि आत्माके विषे देहेन्द्रियके जन्ममरणादि धर्म न रहैं, परन्तु ' मैं कर्ता हूँ, मैं भोक्ता हूँ, मैं पुण्यात्मा हूँ, मैं पापात्मा हूँ, मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ, ' इत्यादि प्रकारकी निरन्तर प्रतीति होती है. इसकारण आत्माको कर्त्ता भोक्ता तौ माननाही पड़ेगा और काणादमतावलम्बियोंने माना भी है. इस शङ्काका समाधान करते हैं कि—

अज्ञानान्मानसोपाधेः कर्तृत्वादीनि चात्मनि ।
कल्प्यतेऽम्बुगते चन्द्रे चलनादिर्यथाम्भसः ॥ २१ ॥

अन्वय—यथा, अम्भसः, चलनादिः, अम्बुगते, चन्द्रे, (कल्प्यते); (एवमेव), अज्ञानात्, मानसोपाधेः, कर्तृत्वादीनि, च, आत्मनि, कल्प्यन्ते ॥२१॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अर्थः—जिसप्रकार जलके चलनादि धर्मोंको अज्ञ पुरुष जलके विषे प्रतिबिम्बित चन्द्रमाके विषे कल्पना करके मानलेते हैं, वास्तवमें चलनादिधर्म चन्द्रमाके नहीं होते; इसीप्रकार 'मैं कर्त्ता हूँ, मैं भोक्ता हूँ,' इत्यादि धर्म मानसोपाधिके अर्थात् अन्तःकरणके हैं. उन अन्तःकरणके धर्मोंको ही अन्तःकरण और आत्माकी एकरूपताके भ्रम अर्थात् अध्यासकरके अविवेकी जो वैशेषिकादिमतावलम्बी हैं वे सच्चिदानन्दस्वरूप आत्माके विषे कल्पना करते हैं. वास्तवमें कर्तृत्व—भोक्तृत्व—आदि धर्म आत्माके नहीं है ॥ २१ ॥

इसीप्रकार राग-द्वेष-इच्छा-आदि अन्तःकरणके धर्म भी अज्ञानकरके कल्पित हैं; इस वार्त्ताको अन्वय-व्यतिरेकयुक्तिकरके वर्णन करते हैं कि—

रागेच्छासुखदुःखादिर्बुद्धौ सत्यां प्रवर्तते ।
सुषुप्तौ नास्ति तन्नाशे तस्माद्बुद्धेस्तु नात्मनः ॥२२॥

अन्वयः—बुद्धौ, सत्याम, रागेच्छासुखदुःखादिः, प्रवर्तते, (यतः), सुषुप्तौ, तन्नाशे, न, अस्ति;

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तस्मात्, (रागेच्छासुखदुःखादिः) बुद्धेः, (अस्ति) आत्मनः, न ॥ २२ ॥

अर्थः--राग (विषयोंमें विशेष अभिलाषा) और इच्छा (सामान्य अभिलाषा) तथा सुख दुःख और आदिशब्दकरके कर्तृत्व-भोक्तृत्व आदि सम्पूर्ण धर्म बुद्धिके हैं, आत्माके नहीं हैं; क्योंकि—बुद्धिके अन्वयव्यतिरेक करके होते हैं; अर्थात् कारणके होनेपर कार्यका होना अन्वय कहाता है, और कारणके न होनेपर कार्यका न होना व्यतिरेक कहाता है. सो यहाँ जब जाग्रत् और स्वप्नावस्थामें बुद्धि विद्यमान होती है तबहीं राग व इच्छा आदि भी होते हैं (वही अन्वय है); और जब सुषुप्ति अवस्थामें बुद्धि अपने कारणरूप अज्ञानके विषे लीन हो जाती है, तब राग व इच्छा आदि धर्म भी प्रतीत नहीं होते हैं (यही व्यतिरेक है) इसकारण राग व इच्छा-आदि धर्म आत्माके नहीं हैं, किन्तु बुद्धिकेही हैं; और आत्माके विषे जो राग व इच्छादि धर्मोंकी प्रतीति होती है सो बुद्धि और आत्माकी एकताके भ्रमकरके

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

होती है. वास्तवमें आत्मा निर्विकार सच्चिदानन्दस्वरूप है ॥ २२ ॥

अब आत्माके स्वाभाविक स्वरूपका वर्णन करते हैं कि—

प्रकाशोऽर्कस्य तोयस्य शैत्यमग्नेर्यथोष्णता ।
स्वभावः सच्चिदानन्दनित्यनिर्मलतात्मनः ॥ २३ ॥

अन्वयः—यथा, अर्कस्य प्रकाशः, तोयस्य शैत्यम्, अग्नेः उष्णता, स्वभावः (अस्ति); (तथा—एव) आत्मनः, सच्चिदानन्दनित्यनिर्मलता, (स्वभावः) (अस्ति) ॥ २३ ॥

अर्थः—जिसप्रकार सूर्यका प्रकाश स्वभाव है, अर्थात् स्वरूप है, और जिसप्रकार जलका शीतलता स्वभाव है, तथा जिस प्रकार अग्निका उष्णता स्वभाव है उसी प्रकार आत्मका सत्, चित्, आनन्द, नित्य और निर्मल स्वभाव है ॥ २३ ॥

तहाँ शङ्का होती है कि—' मैं जानता हूँ, मैं सुखी हूँ, ' इसप्रकार प्रत्येक पुरुषके अनुभवसे आत्मज्ञान और सुखका आश्रय प्रतीत होता है, फिर निर्विकार

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

और सच्चिदानन्दस्वरूप किसप्रकार हो सकता है? इस शङ्काका समाधान करते हैं कि—

आत्मनः सच्चिदंशश्च बुद्धेर्वृत्तिरिति द्वयम् ।
संयोज्य चाविवेकेन जानामीति प्रवर्तते ॥ २४ ॥

अन्वयः—आत्मनः, सच्चिदंशः, बुद्धेः, वृत्तिः, च, इति, द्वयम्, च अविवेकेन, संयोज्य, जानामि इति, प्रवर्तते ॥ २४ ॥

अर्थः—प्रत्यगात्मका सत्-चित्‌अंश अर्थात् बुद्धिकी वृत्तिमें पड़नेवाला आत्माका आभास (छाया) और अज्ञानस्वरूप आनन्दका अंश जो बुद्धिकी वृत्ति, इन दोनोंको एकमें मिलाकर, अज्ञानसे 'मैं जानता हूँ, मैं सुखी हूँ' इत्यादि अनुभव परमात्मा (जीवात्मा) करता है. वास्तवमें सबप्रकारके सम्बन्धरहित आत्माके विषे ज्ञान-सुख-दुःखादि कदापि नहीं होसकते हैं. क्योंकि, ज्ञान-सुख-दुःखादि बुद्धिका वृत्तिरूप परिणाम है; इसकारण ज्ञानसुख दुःखादिका आश्रय बुद्धि है, आत्मा नहीं है; और आत्माके

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

विषे जो ज्ञान-सुख-दुःखादिकी प्रतीति होती है,सो आत्मा और बुद्धिकी एकताके भ्रमसे होती है. सो आत्मा तौ स्वभावतः निर्विकारसच्चिदानन्दस्वरूपही है ॥ २४ ॥

अब आत्माकी निर्विकारता और सच्चिदानन्दस्वरूपताका ही विशेष रीतिसे वर्णन करते हैं कि—

आत्मनो विक्रिया नाऽस्ति बुद्धेर्बोधो न जात्विति ।
जीवः सर्वमलं ज्ञात्वा कर्त्ता द्रष्टेति मुह्यति ॥ २५ ॥

अन्वयः—आत्मनः, विक्रिया, न, अस्ति; बुद्धेः, जातु, बोधः, न, (अस्ति); इति, जीवः, सर्वमलम्, ज्ञात्वा, कर्त्ता, द्रष्टा, इति, मुह्यति ॥ २५ ॥

अर्थः—आत्मा सर्वप्रकारके विकारोंसे रहित (निर्विकार) है, सोइ श्रुतिमें भी कहा है कि " निर्गुणं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम्" निर्गुण, क्रियारहित, शान्तस्वरूप, निष्पाप और निरञ्जन अर्थात् निर्मल है, और गीताके विषे भी कहा है कि " अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽय

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मविकार्योऽयमुच्यते--यह आत्मा अव्यक्त और अचिंत्य तथा निर्विकार है" और बुद्धिके विषे कदाचित् ज्ञान होताही नहीं; क्योंकि, बुद्धि जड़स्वरूप मायाका कार्य होनेसे जड़ है; परन्तु अन्तःकरणावच्छिन्न अर्थात् अन्तःकरणोपाधिक चेतनकी चेतनताकरके देह-इन्द्रिय-अन्तःकरणआदि सम्पूर्ण जड़ पदार्थ चेतनात्मक प्रतीत होने लगते हैं, सो बुद्धिके कर्तृत्वभोक्तृत्व-आदि धर्मोंको जीवात्मा अन्तःकरण और आत्माकी एकताके भ्रमसे आत्माके धर्म मान लेता है. सो मिथ्या भ्रम है. आत्मा तो सर्वदा निर्विकार और सच्चिदानन्दस्वरूप है ॥ २५ ॥

अब आत्माके विषे मिथ्या आरोपित अज्ञानका फल और तत्त्वज्ञानका फल वर्णन करते हैं कि—

रज्जुसर्पवदात्मानं जीवं ज्ञात्वा भयं वहेत् ।
नाहं जीवः परात्मेति ज्ञानं चेन्निर्भयो भवेत् ॥ २६ ॥

अन्वयः--आत्मनम्, रज्जुसपर्वत्, जीवम्, ज्ञात्वा, भयम्, वहेत्; अहम् जीवः, न, (किन्तु) परात्मा, इति, ज्ञातम्, चेत्, निर्भयः, भवेत् ॥ २६ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अर्थः—जिसप्रकार अन्धकारके विषे पडीहुई रज्जु वास्तवमें सर्प नहीं होती है, परन्तु पुरुष उस रज्जुको भ्रमसे सर्प जानकर, भयकम्पादि दोषोंको प्राप्त होता है उसीप्रकार पुरुष निर्विकार आत्माको अज्ञानसे जीव "अर्थात्" साद्वितीय, परिच्छिन्न और संसारी मानकर, नानाप्रकारकी सांसारिक पीड़ाओंको प्राप्त होता है, अर्थात् आत्माके वास्तविक स्वरूपको न जाननेवाला पुरुष जन्ममरणरूप भयको प्राप्त होता है. सोई श्रुतिमें भी कहा है कि—"द्वितीयाद्वै भयं भवति—निश्चयकरके पुरुषको द्वैतज्ञानसे नानाप्रकारके दुःख होते हैं" और "उदरमन्तरं कुरुते अथ तस्य भयं भवति—अपने और आत्माके विषे जो अन्तर अर्थात् भेद मानता है उस पुरुषको जन्ममरणादि भयकी प्राप्ति होती है." तथा "न चेदवेदीन्महती विनष्टिः—जिस पुरुषने आत्मस्वरूपको नहीं जाना, उसकी बड़ी हानि हुई" और स्मृतिमें भी कहा है कि—'ईषदप्यन्तरं कृत्वा रौरवं नरकं व्रजेत्—जो पुरुष जीवात्मा और परमात्मामें अणुमात्र भी

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

भेद मानता है उसको रौरव नरक प्राप्त होता है" और अब पुरुष ऐसा जान लेता है कि—'मैं जीव नहीं हूँ किन्तु अखण्ड, अच्छेद्य, अभेद्य, अद्वितीय, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव, परमात्मा, जगत्‌का साक्षी, असङ्ग और ब्रह्मस्वरूप हूँ,' इसप्रकार "तत्त्वमसि" आदि वाक्योंके द्वारा जान लेता है तब निर्भय होजाता है; सोई श्रुतिमें भी कहा है कि, "ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति" (जो ब्रह्मको जानता है वह ब्रह्मस्वरूपही होजाता है) ॥२६॥

अब यह शङ्का होती है कि—"जब आत्मा, मन और बुद्धि आदिके निकटवर्ती है तो बुद्धिआदिको आत्माका प्रत्यक्ष क्यों नहीं होता है?" इस शङ्काका समाधान करते हैं कि--

आत्मावभासयत्येको बुद्ध्यादीनीन्द्रियाणि च ।
दीपो घटादिवत्स्वात्मा जडैस्तैर्नावभास्यते ॥ २७ ॥

अन्वयः--इन्द्रियाणि, बुद्ध्यादीनि, च, एकः, आत्मा, अवभासयति; दीपः, घटादिवत्, तैः, जडैः, स्वात्मा, न, अवभास्यते ॥ २७ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अर्थः--केवल एकही प्रकाशस्वरूप आत्मा सम्पूर्ण इन्द्रिय और बुद्धि-चित्त-अहंकारादिकोंको प्रकाशित करता है, और वह मन-बुद्धि-अहङ्कारादि जड़ पदार्थ आत्माका प्रकाश नहीं करते हैं; इसकारण आत्मा तौ मन-बुद्धिआदिको जानता है; परन्तु मनबुद्धिआदि जड़ पदार्थ आत्माके साक्षी नहीं हैं और न आत्माके स्वरूपको जानते हैं, जिसप्रकार दीपक घटादि पदार्थोंको प्रकाशित करता है और घटादि मलिनपदार्थोंकरके दीपक प्रकाशित नहीं होता है ॥ २७ ॥

यहाँ शंका होती है कि—जब आत्मा बुद्धिकरके प्रकाशित नहीं होता है अर्थात् नहीं जाना जाता है, तौ आत्मस्वरूपका बोध किस उपायसे होगा ? तहाँ कहते हैं कि—

स्वबोधे नान्यबोधेच्छा बोधरूपतयाऽऽत्मनः ।
न दीपस्यान्यदीपेच्छा यथा स्वात्मा प्रकाशते ॥२८॥

अन्वयः--यथा, दीपस्य, अन्यदीपेच्छा, न (भवति)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(तथा,) आत्मनः, बोधरूपतया, स्वबोधे, (आत्मनि) अन्यबोधेच्छा, न, (किन्तु,) स्वात्मा, प्रकाशते ॥२८॥

अर्थः—जिसप्रकार स्वतः प्रकाशस्वरूप दीपकको अपने प्रकाश करनेके निमित्त अन्य दीपककी इच्छा (आवश्यकता) नहीं होती है; उसीप्रकार नित्यबोध-स्वरूप होनेके कारण स्वयंबोध आत्मस्वरूपके विषे अन्यबोधकी इच्छा (आवश्यकता) नहीं है. क्योंकि आत्मा अनुभवरूप अर्थात् चेनतस्वरूप है ॥ २८ ॥

यहाँ शंका होती है कि–जब आत्मा स्वयं प्रकाश-मान बोधस्वरूप साक्षात्कार है, तब विना यत्नकेही सम्पूर्ण पुरुष मुक्त हो जायँगे, आत्मज्ञानके अर्थ यत्न करनेका कुछ प्रयोजनही नहीं. क्योंकि, साक्षात्कारके निमित्तही सम्पूर्ण यत्न किये जाते हैं. जब साक्षात्कार स्वयंही होग-या, तब तो सम्पूर्ण जीव बन्धमुक्त ब्रह्मस्वरूप होही जायँगे. इस शंकाका समाधान करते हैं कि—

निषिध्य निखिलोपाधीन्नेति नेतीतिवाक्यतः ।
विन्द्यादैक्यं महावाक्यैर्जीवात्मपरमात्मनोः ॥ २९ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सान्वयः—नेति नेतीतिवाक्यतः, निखिलोपाधीन्' निषिध्य, महावाक्यैः, जीवात्मपरमात्मनोः, ऐक्यम्' विन्द्यात ॥ २९ ॥

अर्थः—अपरोक्षरूपसे जो आत्माके चैतन्यस्वरूपका ज्ञान है, वह सामान्यज्ञान होनेसे मुक्तिका साधन नहीं है, किन्तु महावाक्योंसे उत्पन्न जो जीव और ब्रह्मकी एकता विशेषज्ञान है और वही मुक्तिका साधन है. अर्थात् 'नेति नेति' इस वाक्यसे सम्पूर्ण उपाधियोंका निषेध (त्याग) करके, तत्त्वमसि-आदि महावाक्योंके द्वारा जीवात्मा और परमात्माकी एकताका निश्चय करै. अर्थात् "स एष आदेशो नेतिनेतीत्यतन्निरसनम्"—वह यह उपदेश है कि, 'यह आत्मा नहीं है यह आत्मा नहीं है' इस प्रकारकी श्रुतियोंके वचनोंसे अतत् कहिये आत्मासे भिन्नका निरसन (त्याग) करै अर्थात् आत्मासे भिन्नको जड़ औरअनित्य समझै" इस व्याससूत्रके अनुसार सम्पूर्ण समष्टिव्यष्टिरूप उपाधि-स्थूल-सूक्ष्मरूप वा कार्यकारणरूप नामरूपात्मक जगत् अनात्म अर्थात् अनित्य और जड

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

जांनकर निषेध (अनात्मज पदार्थोंका त्याग) करै, और तीन सम्बन्धोंसहित "तत्त्वमसि, अयमात्मा ब्रह्म, प्रज्ञानं ब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि" इन वेदोंके महावाक्योंकरके जीवात्मा और परमात्माकी एकरूपताको निश्चयपूर्वक जानै, इस जानने-(ज्ञान) को ही मुक्तिका साधन और तत्त्वज्ञान कहते हैं. अब सम्बन्धत्रयका वर्णन करते हैं कि—सामानाधिकारण्य १, विशेषणविशेष्यभाव २, और लक्ष्यलक्षणभाव ३, ये तीन सम्बन्ध हैं. तहाँ सामानाधिकरण्य सम्बन्ध दो प्रकारका है.—एक मुख्यसामानाधिकरण्य १ और दूसरा बाधसामानाधिकरण्यसम्बन्ध २ मुख्यसामानाधिकरण्य-सम्बन्धको कहतें हैं—जिसमें एक वस्तुका एक वस्तुके साथ सदा अभेद रहै; जैसे सुवर्णका और कटककुण्डलादिगत सुवर्णका सदा अभेद रहता है, तथा बाधसामानाधिकरण्यसम्बन्ध तहाँ रहता है. जहाँ एक वस्तुका एक वस्तुके साथ बाधकरके सम्बन्ध हो, जैसे भूषणंगत सुवर्ण भूषणके नामरूपादिका बाध करके सामान्य सुवर्णके साथ अभेदको प्राप्त होता

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

है; अथवा बाधसामानाधिकरण्यसम्बन्ध वहाँ होता है, जहाँ दो पदोंका परस्पर भेद हो और अर्थ एकही हो, जैसे घट और कुम्भशब्द तौ भिन्न भिन्न हैं परन्तु अर्थ दोनोंका कम्बुग्रीवादिमत्त्वरूप एकही है, अथवा जैसे 'सोऽयं देवदत्तः' (वह यह देवदत्त है जो काशीमें, देखा था) यहाँ, 'सः, अयम्, देवदत्तः' ये तीन पद हैं. तहाँ सः पद परोक्ष देशकालमें दृष्टका बोधक है और 'अयम्' पद अपरोक्ष देशकालवृत्तिका बोधक है, इसप्रकार इन दोनों पदोंका अर्थ (प्रवृत्तिनिमित्त) भिन्न भिन्न है, परन्तु दोनों पदोंका तात्पर्य (सम्बन्ध) एक देवदत्तके विषेही है इसकारण बाधसामानाधिकरण्यसम्बन्ध है. इसीप्रकार "तत्वमसि" आदि महावाक्योंके विषे, 'तत्' पदका वाच्य अर्थ परोक्ष आदि विशेषणविशिष्ट चेतन होता है, और 'त्वम्' पदका वाच्य अर्थ अपरोक्ष आदि विशेषणविशिष्ट चेतन होता है, इसप्रकार यद्यपि 'तत्-त्वम्' पदका वाच्यार्थ भिन्न भिन्न होता है; परन्तु परोक्ष, अपरोक्ष आदि विशेषणोंका बाध होकर दोनों पदोंका तात्पर्य

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

शुद्धचेतनके विषेही होता है; इसकारण यहाँ बाधसामानाधिकरण्यसम्बन्ध है. और दूसरा विशेषण विशेष्य भावसम्बध है. जैसे–"सोऽयं देवदत्तः" यहाँ 'सः अयम्' ये दोनों पद देवदत्तके विशेषण हैं; और देवदत्त विशेष्य है. तिन विशेषण और विशेष्य दानोंका परस्पर सम्बन्ध है; क्योंकि 'सः-अयम्' ये दोनों पद देवदत्तके स्वरूपका निश्चय करानेवाले हैं. ये दोनों अपने २ देशकालरूप अर्थका त्याग करके देवदत्तके स्वरूपको बोधन कराते हैं. इसकारण यहाँ विशेषण–विशेष्यभावरूप सम्बन्ध है. इसीप्रकार "तत्त्वमसि" इस वाक्यमें भी परोक्ष आदि विशेषणविशिष्ट 'तत्' पदका अर्थ है, और अपरोक्षआदि विशेषणविशिष्ट चेतन 'त्वम्' पदका अर्थ है. सो यहाँ 'तत् त्वम्' इन दोनों पदोंको वाच्य अर्थमें जो साद्वितीयत्व-अद्वितीयत्व, परोक्षत्व-अपरोक्षत्व, व्यापकत्व-पारीच्छिन्नत्व रूप परस्पर भेदव्यवहार है उसको त्यागकर दोनों पदोंका 'असि (है)' में सामानाधिकरण्य होता है, इसकारण यहाँ विशेषण–

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

विशेष्यभावसम्बन्ध हैं. और तीसरा लक्ष्यलक्षणभावसम्बन्ध है. जैसे "सोऽयं देवदत्तः" यहाँ 'सः—अयम्' इन दोनों पदोंसे देशकालआदि विशेषणोंको त्यागकर देवदत्त मात्र लक्षित होता है. इसीप्रकार "तत्त्वमसि" आदि महावाक्योंमें भी 'तत्' पदका वाच्य अर्थ अद्वितीय—परोक्ष—व्यापक चेतन है, और 'त्वम्' पदका वाच्य अर्थ साद्वितीय—अपरोक्ष—परिच्छिन्न चेतन है, इन विरुद्ध धर्मोंका त्याग होकर 'तत्-त्वम्' पदोंका लक्ष्यार्थ विरुद्ध धर्मरहित एक चेतन होता है. इसप्रकार इन तीन सम्बन्धोंके द्वारा लक्षणा करके जीव और ब्रह्मकी एकता सिद्ध होती है. इसकारण लक्षणाका स्वरूप वर्णन करते हैं. वह लक्षणा तीन प्रकारकी है, एक जहल्लक्षणा १, दूसरी अजहल्लक्षणा २ और तीसरी जहदजहल्लक्षणा ३, अब जहल्लक्षणाका स्वरूप वर्णन करते हैं. जैसे—"गंगायां घोषः—गङ्गामें आभीरोंका ग्राम है." यहाँ भगीरथखातावच्छिन्नजलप्रवाहरूप गंगा जो वाच्य अर्थ है उसमें ग्रामका होना असम्भव है; इसकारण प्रवाहरूप वाच्य अर्थको

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

छोड़कर, गंगापदकी तटमें लक्षणा होती है, सो यहाँ गंगापदके सम्पूर्ण वाच्य अर्थका त्याग होनेसे यह जहल्लक्षणा कहाती है, और 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्योंके विषे 'तत् त्वम्' इन दोनों पदोंका चेतनरूप एक अर्थ है, सो अर्थका त्याग न होनेसे जहल्लक्षणा नहीं हो सकती है. अब अजहल्लक्षणाका स्वरूप दिखाते हैं कि जैसे—" अरुणो धावति–अरुण (लाल) दौड़ता है." यहाँ लालवर्णका दौड़ना बाधित है. इसकारण अरुणपदकी अरुण (लाल) वर्णवाले घोड़ेमें लक्षणा होती है; यहाँ अरुणपदकी अपने अर्थ (लाल) को न त्यागकर, घोडेरूप अन्य पदार्थमें लक्षणा हुई है. इसकारण यह अजहल्लक्षणा भी 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्योंमें नहीं हो सकती; क्योंकि महावाक्योंमें सम्पूर्ण वाच्य अर्थका ग्रहण नहीं होता है. और जहाँ किञ्चिन्मात्र अर्थका त्याग और किञ्चिन्मात्र अर्थका ग्रहण हो, वह जहदजहल्लक्षणा कहाती है. और इस जहदजहल्लक्षणाको ही भागत्यागलक्षणा भी कहते हैं. यह भागत्यागलक्षणा ही 'तत्त्वं-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मसि' आदि महावाक्योंमें होती है. जैसे-"सोऽयं देव॰दत्तः" यहाँ देश-काल और पुष्ट--कृश आदि विशेष॰णोंका त्याग होता है, और पिण्डमात्र देवदत्तका ग्रहण होता है. इसकारण भागत्यागलक्षणा संघटित होती है. इसीप्रकार "तत्त्वमासि" आदि महावाक्योंमें भी समष्टि-व्यष्टि-स्थूल-सूक्ष्मरूप वाच्यार्थस्वरूप विरुद्ध अंशका त्याग होकर, व्यापक-मात्र-अखण्ड-चैतन्य लक्ष्यका ग्रहण होता है. इसकारण यहाँ भागत्यागलक्षणा मानी जाती है ॥ २९ ॥

तहाँ प्रश्न करते हैं कि-चेतन यदि उपाधियोंका त्याग करे तबभी कोई हानि नहीं है; क्योंकि चेतन तौ असंग है; तहाँ कहते हैं कि-

आविद्यकं शरीरादि दृश्यं बुद्बुदवत्क्षरम् ।
एतद्विलक्षणं विन्द्यादहं ब्रह्मेति निर्म्मलम् ॥ ३० ॥

अन्वयः-आविद्यकम्, दृश्यम्, शरीरादि, बुद्बु॰दवत्, क्षरम्, एतद्विलक्षणम्, अहं-ब्रह्म-इति, निर्म॰लम्, विन्द्यात् ॥ ३० ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

शोक आदि जो मनके धर्म हैं सो मेरे विषे नहीं हैं; और क्षुधा-तृषाआदि प्राणके धर्म भी मेरे विषे नहीं हैं; क्योंकि मैं प्राणोंसे भिन्न हूँ. सोई श्रुतिमें भी कहा है कि, ब्रह्म प्राणसे और मनसे भिन्न तथा शुभ्र अर्थात् अविद्याके मलोंसे रहित है ॥ ३२ ॥

आत्माही नित्य है उससे भिन्न सम्पूर्ण पदार्थ अनित्य हैं. इसकारण, प्राण अनात्मताको वर्णन करते हैं कि–

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेंद्रियाणि च ।
खं वायुर्ज्योतिरापश्च पृथ्वी विश्वस्य धारिणी ॥ ३३ ॥

अन्वयः–प्राणः, मनः, सर्वेन्द्रियाणि च, खम्, वायुः, ज्योतिः, आपः, विश्वस्य, धारिणी, पृथ्वी, च, एतस्मात्, जायते ॥ ३३ ॥

अर्थः–प्रत्यगभिन्न अर्थात् प्रतिशरीरके विषे अन्तःकरणका साक्षी वा प्रेरक अथवा असत्, जड़ और दुःखरूप संसारसे विपरीत स्वभाववालासे; सत्-चित्-आनन्दस्वरूप जो ब्रह्म उसके सकाशसे प्राण (क्रियाशक्ति); और मन (ज्ञानशक्ति) और सम्पूर्ण इन्द्रिय, आकाश,

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वायु, अग्नि, जल और स्थावरजङ्गमरूप सम्पूर्ण विश्वको धारण करनेवाली पृथ्वी यह संपूर्ण प्रपञ्च अनादि अविद्या करके उस ब्रह्मके सकाशसेही उत्पन्न होता है ॥ ३३ ॥

निर्गुणो निष्क्रियो नित्यो निर्विकल्पो निरञ्जनः ।
निर्विकारो निराकारो नित्यमुक्तोऽस्मि निर्मलः ॥३४॥

अन्वयः-(अहम्), निर्गुणः, निष्क्रियः, नित्यः, निर्विकल्पः, निरञ्जनः, निर्विकारः, निराकारः, नित्यमुक्तः, निर्मलः, अस्मि ॥ ३४ ॥

अर्थः-मैं प्रकृतिरूप माया और मायाका कार्य जो बुद्धि, सत्वगुण, राग और इच्छा इत्यादिकोंसे रहित हूँ, और देहआदि क्रियासे रहित हूँ; नित्य अर्थात् सर्व कालमें चैतन्य स्वरूप हूँ, निर्विकल्प काहिये सङ्कल्पविकल्परूप जो मनके धर्म उनसे रहित हूँ; निरञ्जन कहिये मायाका कार्य जो जगद्रूपी मल उससे रहित हूँ; निर्विकार कहिये मिथ्याकल्पित जो मायाका कार्य जगत् उसका अधिष्ठानरूप हूँ; निराकार कहिये आकाशकी समान स्वतन्त्र व निरवयव हूँ; और नित्य-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मुक्त कहिये वास्तवमें अज्ञानकल्पित मोहादिबन्धनोंसे रहित हूँ, तथा निर्म्मल कहिये मायारूप मलसे रहित हूँ; इसप्रकार अपने स्वरूपको जानना ॥ ३४ ॥

" यद्यपि आत्माका स्वरूप उपर्युक्त प्रकारकाही है; परन्तु देहवान् प्रतीत होता है. इसकारण परिच्छिन्नता तौ रहेहीगी ? " इस शंकाका समाधान करते हैं कि—

अहमाकाशवत्सर्वबहिरन्तर्गतोऽच्युतः ॥
सदा सर्वसमः शुद्धो निःसंगो निर्मलोऽचलः ॥३५॥

अन्वयः—अहम्, सदा, आकाशवत्, सर्वबहिरन्तर्गतः, अच्युतः, सर्वसमः, शुद्धः, निःसंगः, निर्मलः, अचलः, (अस्मि) ॥ ३५ ॥

अर्थः—जगत्के सम्पूर्ण जो जड़ दृश्य पदार्थ हैं, उनके भीतर आकाशके समान मैं व्यापक हूँ, और सबसे भिन्न एकरस चेतनस्वरूप हूँ. यदि कहो कि—सम्पूर्ण दृश्य पदार्थोका नाश होनेसे आत्माका भी नाश होजायगा ? सो नहीं होसकता. क्योंकि, मैं अच्युत हूँ अर्थात् कल्पित सम्पूर्ण जगत्के नाश होनेपर भी नष्ट

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

नहीं होता हूँ; क्योंकि, मैं अधिष्ठानरूप हूँ. यदि कहो कि—अधिष्ठानरूपसे सत्य अविनाशिता हो, परन्तु अन्तःकरणमें तौ आत्माकी सत्ता और चेतनता ये दोनों प्रतीत होती हैं, और घटपटादिमें केवल सत्ताही प्रतीत होती है, चेतनता नहीं; इसकारण आत्मामें विषमता है, सो यह कहना भी नहीं बन सकता. क्योंकि, आत्मा सर्वकालमें सम्पूर्ण पदार्थोंके विषे सम (तुल्य) है, और सत्वगुणके कार्य होनेसे स्वच्छरूप अन्तःकरण आदिमें ही सत्ता और चेतनता दोनों प्रतीत होती हैं, और तमोगुणके कार्य होनेसे मलिनरूप जो घटपटादि उनमें केवल सत्ताही प्रतीत होती है, इसमें आत्माका कौन अपराध है ? और आत्मा शुद्ध अर्थात् पुण्यपापसे रहित है और असंग कहिये वास्तवमें सबके सम्बन्धसे रहित है, और निर्मल कहिये संशयादिमलोंसे रहित है, तथा अचल कहिये सच्चिदानन्दरूपत्व आदि अपने धर्म्मोंसे चलायमान नहीं होता है ॥ ३५ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अब प्रत्यगात्मा जो 'त्वम्' पदार्थ जीवात्मा है, उसका जिसप्रकार लक्ष्यस्वरूप वर्णन किया उसीप्रकार तत्पदार्थ परमात्माका लक्ष्यस्वरूप भी वर्णन किया. अब उन दोनोंका अभेद चिन्तवन करते हैं कि—

नित्यशुद्धविमुक्तैकमखण्डानन्दमद्वयम् ।
सत्यं ज्ञानमनन्तं यत्परं ब्रह्माहमेव तत ॥ ३६ ॥

अन्वयः—यत्, नित्यशुद्धविमुक्तैकम्. अखण्डानन्दम्, अद्वयम्, सत्यम्, ज्ञानम्, अनन्तम्, परम्, ब्रह्म, तत्, अहम्, एव, (अस्मि) ॥ ३६ ॥

अर्थः—जो नित्य कहिये भूत-भविष्यत्—वर्तमानरूप त्रिकालमें बाधारहित, और शुद्ध (अविद्याआदि मलरहित) और विमुक्त कहिये संसारके विषे असक्त, तथा एक कहिये सजातीयभेदशून्य, और अखण्ड कहिये देशकालवस्तुपरिच्छेदशून्य, तथा आनन्द (सुखस्वरूप) अद्वितीय अर्थात् विजातीय और स्वगतभेदशून्य जो सत्यज्ञान आनन्दस्वरूप ब्रह्म है सो मैंही हूँ. सोही श्रुतिमें भी कहा है कि—" सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म " ॥३६॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अब बहुतकालपर्यन्त अभ्यास करनेसे दृढ़ हुए ब्रह्म और आत्मज्ञानका फल दिखाते हैं कि—

एवं निरन्तराभ्यस्ता ब्रह्मैवास्मीति वासना ।
हरत्यविद्या विक्षेपान् रोगानिव रसायनम् ॥ ३७ ॥

अन्वयः-'(अहम्) ब्रह्म एव अस्मि' एवम्, निरन्तराभ्यस्ता, वासना, रसायनम्, रोगान्-इव, अविद्याविक्षेपान्, हरति ॥ ३७ ॥

अर्थः-'मैं ब्रह्मही हूँ' इसप्रकार निरन्तर आदर-पूर्वक मनन करनेसे उत्पन्न हुई वासना अविद्याकृत चित्तके विक्षेप कहिये आत्मब्रह्मावियोगको इसप्रकार नष्ट कर देती है, जिसप्रकार बहुत कालपर्यन्त सेवन करनेसे रसायन (औषध) रोगोंका नाश कर देती है ॥ ३७ ॥

अब ब्रह्म और आत्माकी एकताकी भावनाके निमित्त साधन वर्णन करते हैं कि—

विविक्तदेश आसीनो विरागो विजितेन्द्रियः ।
भावयेदेकमात्मानं तमनन्तमनन्यधीः ॥ ३८ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अन्वयः—विरागः, विजितेन्द्रियः, अनन्यधीः (सन्) विविक्तदेशे, आसीनः, (पुरुषः), तम्, अनन्तम्, एकम्, आत्मानम्, भावयेत् ॥ ३८ ॥

अर्थः—विराग कहिये शब्दस्पर्शादिविषयोंके विषे अभिलाषारहित, और विशेष करके जीती हैं इन्द्रियें जिसने तथा अनन्यधीः कहिये 'मैं ब्रह्मही हूँ, ब्रह्मसे भिन्न नहीं हूँ' इसप्रकार तत्पर है बुद्धि जिसकी, ऐसा होकर, निर्जन एकान्तस्थानमें सुखपूर्वक बैठाहुआ पुरुष, अनन्त कहिये देशकालवस्तुपरिच्छेदरहित अर्थात् अन्त और नाशरहित, तथा वेद और शास्त्रोंकरके प्रसिद्ध आत्माकी भावना करै कि एक-अद्वितीय-चेतनस्वरूपही सम्पूर्ण प्राणियोंके विषे वास करनेवाले हैं, इसप्रकार चिन्तवन करे तब ब्रह्म और आत्माकी एकताका ज्ञान होता है ॥ ३८ ॥

यदि कहो कि—"जब दृश्य प्रपञ्च व्यवहारदशामें प्रत्यक्ष विद्यमान है तौ फिर एकताकी भावना किस प्रकार होगी ?" तहाँ कहते हैं कि—

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

आत्मन्येवाखिलं दृश्यं प्रविलाप्य धिया सुधीः ।
भावयेदेकमात्मानं निर्मलाकाशवत्सदा ॥ ३९ ॥

अन्वयः—सुधीः, अखिलम्, दृश्यम्, धिया, आत्मनि-एव, प्रविलाप्य, सदा, निर्मलाकाशवत्, एकम्, आत्मानम्, भावयेत् ॥ ३९ ॥

अर्थः—सुधीः कहिये शुद्ध अन्तःकरणवाला अधिकारी पुरुष विवेकिनी बुद्धिकरके सम्पूर्ण दृश्य प्रपञ्चको आत्माके विषेही लीन करके, अर्थात् आत्माके विषे विकार कथनमात्रही है; उसको दूर करके अर्थात् पृथ्वीको जलके विषे लीन करै; जलको तेज-(अग्नि) के विषे लीन करै; तेजको वायुके विषे लीन करै; वायुको आकाशके विषे लीन करै; आकाशको मूलप्रकृति (माया) के विषे लीन करके, तदनन्तर 'शुद्ध व्यापक ब्रह्म मैंही हूँ' ऐसा चिन्तवन करै. जैसे शरत्कालके विषे आकाश धूलिमेघआदि उपाधिकरके रहित स्वच्छ होता है, उसीप्रकार आत्माको स्वच्छ एकरस चिन्तवन करना ॥ ३९ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तहाँ प्रश्न करते हैं कि—"सम्पूर्ण दृश्य प्रपञ्चका त्याग करके विवेककी समाधिके विषे आत्मा किसरूप करके स्थित होता है? तहाँ कहते हैं कि—

नामवर्णादिकं सर्वं विहाय परमार्थवित् ।
परिपूर्णचिदानन्दस्वरूपेणावतिष्ठते ॥ ४० ॥

अन्वयः—परमार्थवित्, सर्वम्, नामवर्णादिकम्, विहाय, परिपूर्णचिदानन्दस्वरूपेण, अवतिष्ठते ॥ ४० ॥

अर्थः—परमार्थ कहिये तत्त्वस्वरूप आत्माको जाननेवाला विवेकी पुरुष नामरूपात्मक दृश्यमान प्रपञ्चको अर्थात् जातिमूर्त्ति-आदि सम्पूर्णको त्यागकर परमार्थरूप, अधिष्ठान, कूटस्थ, अन्तर्यामी, सच्चिदानन्दस्वरूप, साक्षी, शुद्ध, चैतन्यस्वरूप और आत्मतत्त्वरूप होकर स्थित होता है. सोही श्रीकृष्ण भगवान्ने गीताके विषे कहा भी है कि—"यथा दीपो निवातस्थो नेंगते सोपमा स्मृता। योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मन":-जिसप्रकार वायुरहित स्थानपै दीपक निश्चल होता है, उसीप्रकार निश्चल यह योगी है, जिसका चित्त वशीभूत है" ॥ ४० ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

यदि कहो कि—"पृथिवी आदि दृश्य प्रपञ्चके लय होनेपर भी समाधिकालमें ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेयभेदरूप त्रिपुटी प्रपञ्चलक्षण पवनरूपके होनेपर पूर्वोक्त निर्वातस्थानमें स्थित, निश्चल, अखण्ड, ज्योतिर्वान् दीपककी उपमा योगीके विषे किसप्रकार घटेगी ?" तहाँ कहते हैं कि—

ज्ञातृज्ञानज्ञेयभेदः परात्मनि न विद्यते ।
चिदानन्दैकरूपत्वाद्दीप्यते स्वयमेव हि ॥ ४१ ॥

अन्वयः—चिदानन्दैकरूपत्वात्, परात्मनि, ज्ञातृज्ञानज्ञेयभेदः, न, विद्यते; (परात्मा), हि, स्वयम्-एव दीप्यते ॥ ४१ ॥

अर्थः—सविकल्प समाधिके विषे यद्यपि ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेयका त्रिपुटी भेद प्रतीत होता है, परन्तु समाधिकालमें कोई भेद नहीं रहता है; क्योंकि, वह परात्मा चिदानन्दस्वरूप स्वयंही प्रकाशित होता है अर्थात् उसके ज्ञानके अर्थ ज्ञान-आदि किसीकी भी अपेक्षा नहीं होती है ॥ ४१ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ब्रह्म और आत्माकी एकताके ज्ञानके अर्थ आत्माका ध्यानादि करनेवालेको प्राप्त होनेवाला प्रत्यक्षफल वर्णन करते हैं कि—

एवमात्मारणौ ध्यानमथने सततं कृते ।
उदितावगतिर्ज्वाला सर्वाज्ञानेन्धनं दहेत ॥ ४२ ॥

अन्वयः—एवम्, आत्मारणौ, सततम्, ध्यानमथने, कृते, अवगतिः, ज्वाला, उदिता, (सती) सर्वाज्ञानेन्धनम्, दहेत् ॥ ४२ ॥

अर्थः—इसप्रकार आत्मरूप अरणीके निरन्तर योगशास्त्रोक्त ध्यानरूप मथनेसे उत्पन्न हुई जो अखण्डाकार 'अहं ब्रह्मास्मि' वृत्तिरूप ज्ञानस्वरूप ज्वाला अर्थात् अग्निकी लपट वह सम्पूर्ण अज्ञान और अज्ञानका कार्य जो जन्ममरणादिरूप संसार—इन्धन उसको पूर्ण रीतिसे भस्म कर देती है. सोही श्रुतिमें भी कहा है कि-"आत्मानमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम्। ज्ञाननिर्मथनाभ्यासाद्दहेत्कर्म स पण्डितः"-"अर्थात् मनको नीचेकी अरणी और प्रणव-(ॐकार) को ऊपरकी अरणी

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

बनाकर, ज्ञानके द्वारा मथनेसे जो कर्मको भस्म करता है, वही पण्डित् है" ॥ ४२ ॥

अब वह पूर्वोक्त उत्पन्न हुई जो अग्निज्वाला सो सम्पूर्ण अज्ञानरूपी इन्धनको भस्म कर देती है इस वार्ताको और निरावरण आत्माके प्रकाशस्वरूपत्वको दृष्टान्तके द्वारा वर्णन करते हैं कि—

अरुणेनेव बोधेन पूर्वसन्तमसे हृते ।
तत आविर्भवेदात्मा स्वयमेवांशुमानिव ॥ ४३ ॥

अन्वयः—बोधेन, अरुणेन, इव, पूर्वसन्तमसे, हृते, (सति), ततः, आत्मा, अंशुमान्, इव, स्वयम्, एव, आविर्भवेत् ॥ ४३ ॥

अर्थः—जिसप्रकार सूर्यके सारथी अरुणकरके सूर्यके उदय होनेसे प्रथम गाढान्धकारके दूर करनेके अनन्तर सूर्यका अखण्ड प्रकाश होता है, उसीप्रकार बोध (एकत्वके ज्ञान) करके अज्ञानरूप गाढान्धकरके दूर होनेपर आत्मा सूर्यवत् स्वयं प्रकाशित होता है, अर्थात् निरावरण ब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति हो जाती है. सोही गीतामें भी

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कहा है कि—"ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः । तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम्"—"अर्थात् जिनका अज्ञान ज्ञानसे नष्ट होगया हो उनको ब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति, (प्रकाश) इसप्रकार होती है, जिसप्रकार सूर्यका प्रकाश होता है" ॥ ४३ ॥

तहाँ शङ्का होती है कि—"आत्मा तो श्रुतियोंआदिके प्रमाणसे साक्षात् अपरोक्ष होनेसे नित्यप्राप्त है; फिर यह कहना किसप्रकार बनेगा कि, अज्ञानका नाश होनेपर ब्रह्मकी प्राप्ति होती है ? क्योंकि—जो नित्यप्राप्त वस्तु होती है, वह परोक्ष और अप्राप्त नहीं हो सकती." इसका समाधान करते हैं कि—

आत्मा तु सततं प्राप्तोऽप्यप्राप्तवदविद्यया ।
तन्नाशे प्राप्तवद्भाति स्वकण्ठाभरणं यथा ॥ ४४ ॥

अन्वयः—आत्मा, सततम्, प्राप्तः—अपि, अप्राप्तवत्, तु, अविद्यया, (भाति); तन्नाशे, यथा, स्वकण्ठाभरणम्, (तथा), प्राप्तवत्, भाति ॥ ४४ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अर्थः-वास्तवमें तत्त्वदृष्टिकरके तौ आत्मा निरन्तर प्राप्त है, परन्तु अविचारी पुरुषोंको अनादि अविद्याकरकैं अप्राप्तसा प्रतित होता है. सो गुरुकृपाके द्वारा महावाक्योंके ज्ञानकरके उस अविद्याका नाश होनेपर आत्मा इसप्रकार प्राप्त हुआसा प्रतीत होता है, कि—जिसप्रकार कण्ठमें धारण करीहुई मालाको कोई पुरुष भूलकर अज्ञानसे 'माला कण्ठमें नहीं है' ऐसा जान लेता और जब स्मृति हो जाय तब 'माला मिलगई' ऐसा जानता है ॥ ४४ ॥

तहाँ शंका होती है कि—"जिसका अपरोक्ष साक्षात्कार है, वह ब्रह्मही नित्यप्राप्त है; जीवात्मा तौ नित्यप्राप्त होही नहीं सकता." तहाँ कहते हैं कि—

स्थाणौ पुरुषवद्भ्रान्त्या कृता ब्रह्मणि जीवता ।
जीवस्य तात्विके रूपे तस्मिन् दृष्टे निवर्तते ॥ ४५ ॥

अन्वयः—स्थाणौ, पुरुषवत्, ब्रह्मणि, जीवता, भ्रान्त्या, कृता, (अस्ति); जीवस्य, तस्मिन्, तात्विके, रूपे, दृष्टे, निवर्तते ॥ ४५ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अर्थः—जैसे गाढ़ान्धकारमें स्थित स्थाणु (स्तंभ)-के विषे भ्रान्तिकरके 'पुरुष है' ऐसी मिथ्या प्रतीति होने लगती है, उसीप्रकार ब्रह्मके विषे अनादि अविद्याकृत भ्रान्तिकरके कर्तृत्व-भोक्तृत्व-आदि जीवके लक्षण आरोपण कर लिये हैं; वास्तवमें ब्रह्मके विषे कर्तृत्व-भोक्तृत्व आदि अर्थात् जीवपना नहीं है. इसकारण, जीवात्माका तात्त्विक अर्थात् वास्तविक स्वरूप साक्षात् अपरोक्ष जो ब्रह्म उसको "तत्त्वमसि" आदि वाक्योंके द्वारा साक्षात् करनेपर जीवपना निवृत्त हो जाता है; जिसप्रकार कि, पुरुषका भ्रम दूर होनेपर स्थाणुका वास्तविक रूप प्रतीत हो जाता है ॥ ४५ ॥

विवेकी पुरुषोंको भी 'मेरा है, तेरा है' इत्यादि सांसारिक दृढ़ प्रतीति देखनेमें आती है. फिर यह कथन किसप्रकार बनेगा कि, विवेक होनेसे संसारकी निवृत्ति होती है ? तहाँ कहते हैं कि—

तत्त्वस्वरूपानुभवादुत्पन्नं ज्ञानमञ्जसा ।
अहंममेति चाज्ञानं बाधते दिग्भ्रमादिवत् ॥४६॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अन्वयः–तत्त्वस्वरूपानुभवात्, उत्पन्नम्, ज्ञानम्, अञ्जसा, दिग्भ्रमादिवत, अहम्-मम-इति, अज्ञानम्, बाधते, च ॥ ४६ ॥

अर्थः–जीवका जो सच्चिदानन्दात्मक वास्तविक लक्ष्य है, उसका अनुभव होनेसे उत्पन्न हुआ जो "तत्त्वमसि" आदि महावाक्योंकी एकतासे ब्रह्म और आत्माके एकत्वका दृढ़ ज्ञान, वह ज्ञान तत्कालही, अहम् (मैं) मम (मेरा है) इत्यादि अज्ञानके कार्योंको इसप्रकार नष्ट कर देता है कि, जिसप्रकार अन्धकारसे उत्पन्न हुआ दिशाओंका भ्रम और स्थाणु आदिके विषे पुरुष आदिकी प्रतीति सूर्यका प्रकाश होतेही नष्ट हो जाते हैं ॥ ४६ ॥

अब जिनका अज्ञान नष्ट होगया है, ऐसे ज्ञानी पुरुषोंकी दृष्टिका वर्णन करते हैं कि–

सम्यग्विज्ञानवान् योगी स्वात्मन्येवाखिलं स्थितम् ।
एकं च सर्वमात्मानमीक्षते ज्ञानचक्षुषा ॥ ४७ ॥

अन्वयः–सम्यक्, विज्ञानवान्, योगी, ज्ञानचक्षुषा,

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अखिलम्, आत्मनि-एव, स्थितम्, सर्वम्, आत्मानम्, च, एकम्, ईक्षते ॥ ४७ ॥

अर्थः—संशय और विपरीतज्ञानकरके रहित ब्रह्मका साक्षात् ज्ञाता योगी साक्षात् (अपरोक्ष) ज्ञानरूपी दृष्टिसे परिपूर्ण, अधिष्ठान, कूटस्थ, व साक्षी अपने (आत्माके) स्वरूपके विषे सम्पूर्ण नामरूपात्मक दृश्य प्रपंचको अज्ञानकल्पित देखता है; क्योंकि—यह कल्पित दृश्यमान सम्पूर्ण प्रपंच अधिष्ठानकी सत्तासे भिन्न है, इसकारण सम्पूर्ण दृश्य प्रपंचके विषे एक, अद्वितीय, अधिष्ठानभूत आत्माको ही देखता है; आत्मासे भिन्न अविद्याकल्पित यह संसार कथन मात्रही है; इसकारण ज्ञानी पुरुष जगत्को शशश्रृङ्ग, नरविषाण और आकाशपुष्पोंकी समान मिथ्या जानकर, ज्ञानदृष्टिसे आत्मस्वरूपको ही देखता है ॥ ४७ ॥

तहाँ शङ्का होती है कि—"जगत् तो प्रत्यक्ष प्रतीत होता है; फिर जगत्को ज्ञानी पुरुष आत्मासे भिन्न किस प्रकार देखता है ?" तहाँ कहते हैं कि—

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

आत्मैवेदं जगत्सर्वमात्मनोऽन्यन्न विद्यते ।
मृदो यद्वद्घटादीनि स्वात्मानं सर्वमीक्षते ॥ ४८ ॥

अन्वयः—यद्वत्, घटादीनि, मृदः, (तथा), इदम्, सर्वम्, जगत्, आत्मा-एव; आत्मनः, अन्यत्, न, विद्यते; (अतः, ज्ञानी,) सर्वम्, स्वात्मानम्, समीक्षते ॥ ४८ ॥

अर्थः—जिसप्रकार मृत्तिकाके कार्य घटादि, मृत्तिकाहीसे होते हैं; उसीप्रकार यह सम्पूर्ण आत्माका कार्य दृश्य प्रपंच आत्माही है; उपादानकारणरूप आत्मासे भिन्न इस कल्पित जगत्की सत्ता कुछ भी नहीं है. इसकारण, ज्ञानी पुरुष सम्पूर्ण दृश्य प्रपंचको आत्मस्वरूपही देखता है; भिन्न नहीं ॥ ४८ ॥

इसप्रकार ज्ञानीकी तत्त्वदृष्टिका वर्णन किया. अब जीवन्मुक्ति अवस्थाका वर्णन करते हैं कि—

जीवन्मुक्तिस्तु तद्विद्वान् पूर्वोपाधिगुणांस्त्यजेत् ।
सच्चिदानन्दरूपत्वाद्भवेद्भ्रमरकीटवत् ॥ ४९ ॥

अन्वयः—(या), जीवन्मुक्तिः, तद्विद्वान्, तु, पूर्वो-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पाधिगुणान्, त्यजेत्; (तदा), सच्चिदानन्दस्वरूपत्वात्, भ्रमरकीटवत्, भवेत् ॥ ४९ ॥

अर्थः-आत्मतत्त्वको साक्षात् करनेवाला विवेकी जीवन्मुक्त पुरुष तत्त्वज्ञान होनेसे प्रथम अनादि अविद्याकरके कल्पित देह-इन्द्रिय-मन-बुद्धि-चित्त-अहङ्कार-आदि उपाधियोंको त्रिगुणरूप मायाके धर्म जानकर, विवेकके द्वारा त्याग देय, तब पुरुष सच्चिदानन्दस्वरूप हो-जाता है; जिसप्रकार भृङ्गीनामक कीड़ा भ्रमर कीड़ेके अधिकतर भयसे भ्रमरकीसी अपनी भी चित्तकी वृत्तिको कर लेता है, अर्थात् भृङ्गीशरीरके धर्मोंको त्यागकर, भ्रमररूप हो जाता है, उसीप्रकार ब्रह्मज्ञानी निरुपाधिक ब्रह्मरूप हो जाता है ॥ ४९ ॥

अब जीवन्मुक्त पुरुषको श्रीरामचन्द्रावताररूप अलंकारसे वर्णन करते हैं कि—

तीर्त्वा मोहार्णवं हत्वा रागद्वेषादिराक्षसान् ।
योगी शान्तिसमायुक्तो ह्यात्मारामो विराजते ॥ ५० ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अन्वयः—हि, आत्मारामः, योगी, मोहार्णवम्, तीर्त्वा, रागद्वेषादिराक्षसान्, हत्वा, शान्तिसमायुक्तः, विराजते ॥ ५० ॥

अर्थः—आत्माके विषे है आराम (स्थिति) जिसकी ऐसा योगी पुरुष मोहार्णव कहिये अज्ञानरूप समुद्रको ब्रह्म और जीवात्माकी एकतारूप पुलके द्वारा तरकर और शान्तिरूप जानकीका हरण करनेवाले रागद्वेषादि-रूप राक्षसोंको शुद्ध अन्तःकरणरूपी धनुषमें चढ़े हुए वैराग्य (विराग) आदि बाणोंसे मारकर, शान्तिरूप सी-ताकरके युक्त हो, प्रारब्धशेष शरीरस्थितिरूपी अयो-ध्याके विषे स्वरूपलक्षणकरके अपने निवृत्तिरूप सिंहा-सनपर बैठकर विशेषकरके प्रकाशित होता है ॥ ५० ॥

अब जीवन्मुक्तकी स्थिति वर्णन करते हैं कि—

बाह्यानित्यसुखासक्तिं हित्वात्मसुखनिर्वृतः ।
घटस्थदीपवत् स्वच्छः स्वान्तरेव प्रकाशते ॥ ५१ ॥

अन्वयः—बाह्यानित्यसुखासक्तिम्, हित्वा, आत्मसु-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

खनिर्वृतः, स्वच्छः, (जीवन्मुक्तः), घटस्थदीपवत्, स्वान्तः–एव, प्रकाशते ॥ ५१ ॥

अर्थः–नेत्रआदि जो बाह्य इन्द्रिय हैं, उनका विषयोंके साथ सम्बन्ध होनेसे उत्पन्न हुआ जो विषयानन्दरूप अनित्य सुख उसकी आसक्तिको त्यागकर, आत्मसुखकरके निर्वृत (तृप्त) हुआ, और स्वच्छ कहिये अपने स्वरूपभूत महिमाके विषे स्थित जीवन्मुक्त पुरुष अपने अन्तःकरणके विषे ही साक्षात् ब्रह्मरूप होकर और बाहर चेतनरूपसे इसप्रकार प्रकाशमान होता है, कि जिसप्रकार घटके विषे स्थित दीपक बाह्यनिवृत्त किरणोंकरके घटके भीतर विशेषकरके प्रकाशित होता है; और उष्णताआदि धर्म बाहर भी प्रतीत होते हैं, सोही गीतामें श्रीकृष्ण भगवान्ने भी कहा है कि–"प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्। आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते–अर्थात् हे अर्जुन! ज्ञानी जब मन की सम्पूर्ण कामनाओंको त्यागता है, तब अपने आत्मामें ही सन्तुष्ट होकर, स्थिरबुद्धि कहलाता है" ॥ ५१ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उपाधिस्थोऽपि तद्धर्मैर्न लिप्तो व्योमवन्मुनिः ।
सर्वविन्मूढवत्तिष्ठदसक्तो वायुवच्चरेत ॥ ५२ ॥

अन्वयः—उपाधिस्थः अपि, व्योमवत्, तद्धर्मैः, न, लिप्तः, सर्ववित्, मुनिः (अपि,) मूढवत्, तिष्ठेत्, वायुवत्, असक्तः, चरेत् ॥ ५२ ॥

अर्थः—देहादि उपाधियोंमें साथीरूप स्थित भी होकर, आकाशकी समान उपाधियोंके सुखदुःख आदि धर्मोंके संसर्गरहित मुनि, अर्थात् जिसप्रकार आकाश धूलिआदिसे लिप्त नहीं होता है, उसीप्रकार उपाधियोंके धर्मोंसे लिप्त न होनेवाला, वेदान्तशास्त्रका मननकारी तत्त्वज्ञानी, सर्वज्ञ होकर भी मूढ (अज्ञ वा मूक) पुरुषकी समान अपनी स्थिति रक्खै, और प्रारब्धभोगवश प्राप्त हुए विषयोंमें आसक्त न होकर, वायुकी समान विचरै, अर्थात् जिसप्रकार वायु सुगन्धि-दुर्गन्धियुक्त पदार्थोंके विषे आसक्तिरहित होकर, अपने स्वरूपमेंही विचरता है, उसीप्रकार ज्ञानी भी विषयोंकी आसक्तिको त्यागकर, अपने स्वरूमें विचरै ॥ ५२ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अब ज्ञानीकी विदेह कैवल्य मुक्तिका वर्णन करते हैं कि—

उपाधिविलयाद्विष्णौ निर्विशेषं विशेन्मुनिः ।
जले जलं वियद्व्योम्नि तेजस्तेजसि वा यथा ॥५३॥

अन्वयः—यथा, जले, जलम्, व्योम्नि, वियत्, वा तेजसि, तेजः, (तथा), मुनिः, उपाधिविलयात्, विष्णौ, निर्विशेषम्, विशेत् ॥ ५३ ॥

अर्थः—जिसप्रकार जलमें जल अर्थात् जिसप्रकार नदी समुद्रको प्राप्त हो, नामरूपका त्याग करके, समुद्र-रूप हो जाती है, और जिसप्रकार घटाकाशकी उपाधिका नाश होनेपर घटाकाश महाकाशरूप होजाता है, तथा जिसप्रकार दीपकादिरूप तेज उपाधिके नष्ट होनेपर तेजरूप होजाता है; उसीप्रकार ज्ञानी पुरुष प्रारब्धभोगोंकी समाप्ति होनेके कारण देह-इन्द्रियादिरूप उपाधियोंके लीन होनेपर सर्वव्यापी विष्णु भगवान्के विषे सम्पूर्ण विशेषोंसहित यथार्थरूपकरके प्रवेश करता है, अर्थात् ब्रह्मके साथ अभेदको प्राप्त होता है ॥ ५३ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

विदेह अवस्थाके विषे स्थित विवेकी (ज्ञानी) जिस परब्रह्मको प्राप्त हो जाता है, उसका आठ श्लोकोंकरके वर्णन करते हैं—

यल्लाभान्नापरो लाभो यत्सुखान्नापरं सुखम् ।
यज्ज्ञानान्नापरं ज्ञानं तद् ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥ ५४ ॥

अन्वयः—यल्लाभात्, अपरः, लाभः, न; यत्सुखात्, अपरम्, सुखम्, न; यज्ज्ञानात्, अपरम्, ज्ञानम्, न; तत्, ब्रह्म—इति, अवधारयेत् ॥ ५४ ॥

अर्थः—जगत्के विषे जिस परब्रह्मके लाभ (प्राप्ति)-से अधिक कोई लाभ नहीं है; क्योंकि—उस परब्रह्मरूप लाभके परम पुरुषार्थरूप होनेसे अन्य लाभ उसके अन्तर्भूत हैं. और जिस ब्रह्मके स्वरूपसुखसे अधिक कोई सुख नहीं है; क्योंकि—ब्रह्मसुख सम्पूर्ण सुखोंसे अधिक होनेके कारण अन्य सर्व सुख उसके अन्तर्भूत हैं. तथा जिस ब्रह्मके साक्षात्काररूप ज्ञानसे पर अन्य कोई ज्ञान नहीं है; क्योंकि—ब्रह्मज्ञानी साक्षात् ब्रह्मरूपही होता है. इसकारण ब्रह्मज्ञान परमपुरुषार्थका हेतु होनेसे सम्पूर्ण

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ज्ञानोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ है. विदेह कैवल्य अवस्थाके विषे स्थित विवेकी पुरुष इसप्रकार ब्रह्मस्वरूपका निश्चय करै ॥ ५४ ॥

यद्दृष्ट्वा न परं दृश्यं यद्भूत्वा न पुनर्भवः ।
यज्ज्ञात्वा न परं ज्ञानं तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥ ५५ ॥

अन्वयः—यत्, दृष्ट्वा, परम्, दृश्यम्, न; यत्, भूत्वा, पुनर्भवः, न; यत्, ज्ञात्वा, परम्, ज्ञानम्, न; तत्, ब्रह्म—इति, अवधारयेत् ॥ ५५ ॥

अर्थः—जिस परब्रह्मके देखने—(साक्षात्कार होने)-पर और कुछ देखना नहीं है; क्योंकि—अधिष्ठानरूप ब्रह्मका साक्षात्कर होनेपर सम्पूर्ण कल्पित जगत्का साक्षात्कार हो जाता है. और जिस ब्रह्मका स्वरूप होकर अर्थात् जिस ब्रह्मके साथ अभेदको प्राप्त होकर फिर संसारमें जन्म नहीं होता है. सोही श्रीकृष्ण भगवान्ने गीतामें अर्जुनके प्रति कहा है कि—"यद्गत्वा न निवर्त्तन्ते तद्धाम परमं मम—अर्थात् हे अर्जुन! जिस धामको प्राप्त होकर पुरुष फिर नहीं लौटता है, वही मेरा परम धाम है."

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

और सम्पूर्णके उपादानकारणरूप जिस ब्रह्मको जानकर अन्य किसी पदार्थके जाननेकी इच्छा नहीं रहती है; क्योंकि कारणकी सत्तासे कार्यकी सत्ता भिन्न नहीं होती है; सो कारणरूप ब्रह्मके जाननेसे सम्पूर्ण कार्य जाना हुआ हो जाता है. इसप्रकार वर्णन कियेहुएको ही परब्रह्मरूप जानना ॥ ५५ ॥

ऊपर ऐसा वर्णन किया है कि—विदेहकैवल्य अवस्थाके विषे स्थित ज्ञानी परब्रह्मको प्राप्त होता है. तहाँ यह शङ्का होती है कि, वह ब्रह्म परिच्छिन्न (एकदेशमें रहनेवाला) है या अपरिच्छिन्न (सर्वव्यापक) है ? यदि कहो कि, परिच्छिन्न है तब तो परिच्छिन्न नाशवान् होता है. इसकारण, उसको परमपुरुषार्थरूपता प्राप्त नहा होगी और यदि कहो कि अपरिच्छिन्न है तो सर्वव्यापक ब्रह्मकी ज्ञानीको प्राप्ति होना नहीं बन सकता. इसका समाधान करते हैं कि—

तिर्यगूर्ध्वमधः पूर्णं सच्चिदानन्दमद्वयम् ।
अनन्तं नित्यमेकं यत्तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥ ५६ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अन्वयः—यत्, तिर्यक्-ऊर्ध्वम्-अधः-पूर्णम्, सच्चिदानन्दम्, अद्वयम्, अनन्तम्, नित्यम्, एकम्, तत्, ब्रह्म—इति अवधारयेत् ॥ ५६ ॥

अर्थः—जो तिर्यक् कहिये पूर्वआदि चारों दिशाओंके विषे और ऊपर तथा नीचे सर्वत्र पूर्ण है, जो अनन्त कहिये देशकाल-वस्तु-कृत परिच्छेदसे रहित है, नित्य कहिये सत्य है, और एक कहिये सजातीय, विजातीय-स्वगत, भेदशून्य है, वही ब्रह्म है, ऐसा निश्चय करना. इसप्रकार परमात्माकी परिपूर्ण नित्यआनन्द स्वरूपताकरके परमपुरुषार्थता सिद्ध होती है ॥ ५६ ॥

अतद्व्यावृत्तिरूपेण वेदान्तैर्लक्ष्यतेऽव्ययम् ।
अखण्डानन्दमेकं यत्तद् ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥ ५७ ॥

अन्वयः—यत्, अव्ययम्, अखण्डानन्दम्, एकम्, वेदान्तैः, अतद्व्यावृत्तिरूपेण, लक्ष्यते, तत्, ब्रह्म इति अवधारयेत् ॥ ५७ ॥

अर्थः—जो अविनाशी, अखण्ड, सुखस्वरूप, निर्विकार, केवल, अद्वितीय, अतद्व्यावृत्तिरूप कहिये जग-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तूकी निवृत्ति अर्थात् परमार्थरूपसे वेदान्तोंके द्वारा लखा (जाना) जाता है अर्थात् वास्तवरूप लक्षणाकरके निश्चय किया जाता है वही ब्रह्म है ऐसा ज्ञानी पुरुष निश्चय करै ॥ ५७ ॥

तहाँ शंका होती है कि–शास्त्रोंके विषे तौ ब्रह्मा व इन्द्रादि देवताओंका भी अखण्ड सुख वर्णन किया है, सो यहाँ केवल ब्रह्मका ही निरतिशय सुख कैसे वर्णन किया ? उसका समाधान करते हैं कि—

अखण्डानन्दरूपस्य तस्यानन्दलवाश्रिताः ।
ब्रह्माद्यास्तारतम्येन भवन्त्यानन्दिनोऽखिलाः ॥५८॥

अन्वयः–तस्य, अखण्डानन्दरूपस्य, आनन्दलवाश्रिताः, अखिलाः ब्रह्माद्याः तारतम्येन, आनन्दिनः, भवन्ति ॥ ५८ ॥

अर्थः–अपरिच्छिन्न आनन्दके समुद्रस्वरूप उस ब्रह्मके ही आनन्दलव-(सुखलेश) के आश्रित सम्पूर्ण ब्रह्मा-इन्द्रादिक देवता तारतम्यकरके अर्थात् अपने २ पुण्यके अनुसार कमती बढ़ती आनन्द करके युक्त होते

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हैं. सोही श्रुतिमें भी कहा है कि–"तस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति-अर्थात् उसी ब्रह्मानन्दके लेशसे अन्य सर्व भूत आनन्दित रहते हैं." इसकारण ब्रह्मादि सबके आनन्द ब्रह्मानन्दके अन्तर्भूत हैं, उस ब्रह्मको ही विदेहअवस्थामें स्थित ज्ञानी प्राप्त होता है ॥ ५८ ॥

तहाँ प्रश्न करते हैं कि–"जिसके आनन्दके लेशकरके ब्रह्माआदि संपूर्ण देवता आनन्दित होते हैं, वह परब्रह्म कहाँ स्थित रहता हैं?" इसका उत्तर देते हैं कि–

तद्युक्तमखिलं वस्तु व्यवहारस्तदन्वितः ।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म क्षीरे सर्पिरिवाखिले ॥ ५९ ॥

अन्वयः–अखिले, क्षीरे, सर्पिः-इव, तद्युक्तम्, अखिलम्, वस्तु, व्यवहारः; तदन्वितः, तस्मात्, ब्रह्म, सर्वगतम् (अस्ति) ॥ ५९ ॥

अर्थः-जिसप्रकार घृत सम्पूर्ण दुग्धके विषे अभेद रूपकरके व्याप्त रहता है, उसीप्रकार घटपटादि सम्पूर्ण वस्तु ये सच्चिदानन्द ब्रह्मकी सत्ता करके युक्त होकर अस्ति-भाति-प्रियरूप करके प्रकाशमान होती हैं और

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उस ब्रह्मकी सत्ताकरकेही वचन, दान, गमन, विसर्ग, आनन्द, क्रियाआदि सम्पूर्ण व्यवहार सिद्ध होते हैं. सो भगवान्‌ने भी कहा है कि—"सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्—अर्थात् सम्पूर्ण इन्द्रियोंके गुणोंका प्रकाशक और सम्पूर्ण इन्द्रियोंकरके रहित वह ब्रह्मही है." उसकारण सम्पूर्ण वस्तुओंके विषे ब्रह्म अभेदरूपकरके व्याप्त है, ब्रह्मकी स्थितिका कोई देश काल नियतरूपसे नहीं है; किन्तु ब्रह्म सर्वव्यापक है ॥ ५९ ॥

यद्यपि परमात्मा सम्पूर्ण प्रपञ्चमें अनुगत है. परन्तु परमात्माके विषे प्रपञ्चके धर्मोंका स्पर्श नहीं होता है, इस वार्त्ताका वर्णन करते हैं; कि—

अनण्वस्थूलमह्रस्वमदीर्घमजमव्ययम् ।
अरूपगुणवर्णाख्यं तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥ ६० ॥

अन्वयः—(यत्), अनणु, अस्थूलम्, अह्रस्वम्, अदीर्घम्, अजम्, अव्ययम्, अरूपगुणवर्णाख्यम्, तत्, ब्रह्म इति, अवधारयेत् ॥ ६० ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अर्थः-आत्मा अणुरूप (सूक्ष्मरूप) नहीं है और "अणोरणीयान् महतो महीयान्" इस श्रुतिमें जो आत्माको अणुरूप वर्णन किया है, उसका तात्पर्य यह है कि—आत्माका स्वरूप दुर्विज्ञेय (अतिकठिनतासे जाननेयोग्य) है. किन्तु श्रुतिका यह तात्पर्य नहीं है कि-आत्मा अणुमात्र है और आत्मा अस्थूल है अर्थात् स्थूल (महान्) नहीं है. और उपर्युक्त श्रुतिके विषे जो आत्माको महान् रूप वर्णन किया है, उसका तात्पर्य यह है कि-आत्मा सम्पूर्णका अधिष्ठानरूप होनेसे सर्वश्रेष्ठ है. यहाँ महान् पदका परिमाण अर्थ नहीं है; और आत्मा ह्रस्व-दीर्घ-परिमाणसे रहित है; अज, अव्यय अर्थात् जन्ममरणरहित है, और अरूप कहिये शुक्लपीतादि अथवा सत्वादिके परिणामरहित, और निर्गुण तथा वर्णहीन अर्थात् ब्राह्मणादिवर्णरहित जो ब्रह्म है उस का ही मुमुक्षुपुरुष निश्चय करता है ॥ ६० ॥

यद्भासा भासतेऽर्कादिर्भास्यैर्यत्तु न भास्यते ।
येन सर्वमिदं भाति तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥ ६१ ॥

अन्वयः-यद्भासा, अर्कादिः, भासते; भास्यैः, तु, यत्, न, भा-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

स्यते;येन,इदम्, सर्वम् भाति;तत् ब्रह्मइति,अवधारयेत्६१

अर्थः—जिस परमात्माके अलौकिक प्रकाशकरके सूर्यादि प्रकाशमान होते हैं, और प्रकाशित सूर्यादिकों करके जो प्रकाशित नहीं होता है अर्थात् जिस परमात्माके विषे सूर्य-चंद्रमा आदिका प्रकाश नहीं होता है, और जिस परमात्मा करके यह सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित है तैसाही श्रुतिमें भी कहा है कि—"न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकम् । नेमा विद्युतयो भान्ति कुतोऽयमग्निः ॥ तमेव भान्तमनुभाति सर्वम् । तस्य भासा सर्वमिदं विभाति" उसको ही ब्रह्मरूप निश्चय करै ॥ ६१ ॥

स्वयमन्तर्बहिर्व्याप्य भासयन्नखिलं जगत् ।
ब्रह्म प्रकाशते वह्निप्रतप्तायसपिण्डवत् ॥ ६२ ॥

अन्वयः—ब्रह्म, वह्निप्रतप्तायसपिण्डवत्,अन्तः बहिः, व्याप्य, अखिलम्,जगत्, भासयन्,स्वयम्,प्रकाशते ॥६२॥

अर्थः—अग्निकरके तपे हुए लोहपिण्डकी समान अर्थात् जिसप्रकार तपेहुए लोहपिण्डके विषे बाहर भीतर अग्नि व्याप्त होती है, उसीप्रकार ब्रह्म जगत्के बाहर

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

भीतर व्याप्त होकर, सम्पूर्ण जगत्‌को अस्ति-भाति-प्रियरूपकरके अर्थात् सत्ता, चेतनता, और आनन्दरूपता करके प्रकाशित करता हुआ स्वयं भी प्रकाशित होता है ॥६२॥

जगद्विलक्षणं ब्रह्म ब्रह्मणोऽन्यन्न किञ्चन ।
ब्रह्मान्यद्भाति चेन्मिथ्या यथा मरुमरीचिका ॥ ६३ ॥

अन्वयः—ब्रह्म, जगद्विलक्षणम्; ब्रह्मणः, अन्यत्, किञ्चन, न; (अस्ति) चेत्, ब्रह्मान्यत्, भाति, (तर्हि) यथा मरुमरीचिका, (तथा) मिथ्या (अस्ति) ॥६३॥

अर्थः—अविद्याकल्पित, जड़, दुःखरूप व असत् जो जगत् उससे ब्रह्म विलक्षण (विपरीत) है अर्थात् जड़ जगत्‌से भिन्न, सत्–चित् आनन्दस्वरूप है और ब्रह्मसे भिन्न कुछ पदार्थ नहीं है, और जो कुछ ब्रह्मसे भिन्न प्रतीत होता है वह इसप्रकार मिथ्या है, कि—जिस प्रकार मरुमरीचिका अर्थात् मृगतृष्णाका जल मिथ्या प्रतीत होता है किन्तु वास्तविक नहीं है ॥ ६३ ॥

दृश्यते श्रूयते यद्यद्ब्रह्मणोऽन्यन्न तद्भवेत् ।
तत्त्वज्ञानाच्च तद्ब्रह्म सच्चिदानन्दमद्वयम् ॥ ६४ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अन्वयः—यत्, दृश्यते, यत्, (च), श्रूयते, तत्, ब्रह्मणः, अन्यत्, न, भवेत्ः, तत्त्वज्ञानात्, च, तत्, ब्रह्म, सच्चिदानन्ददम्, अद्वयम्, (प्रतीयते) ॥ ६४ ॥

अर्थः-जो पदार्थ नेत्रोंसे देखनेमें आते हैं, और जो सुननेमें आता है, और जो मनसे स्मरण किया जाता है, और जो वाणीसे कथन किया जाता है, वह सम्पूर्ण ब्रह्मही है; ब्रह्मसे भिन्न कुछ नहीं है. और वह सच्चिदानन्दस्वरूप अद्वितीय ब्रह्म तत्त्वज्ञानसे जाना जाता है ॥६४ ॥

तहाँ शङ्का होती है कि यदि सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्मको सर्वव्यापक कहते हो तो वह सर्वत्र प्रतीत क्यों नहीं होता है ? तहाँ कहते हैं कि—

सर्वगं सच्चिदात्मानं ज्ञानचक्षुर्निरीक्षते ।
अज्ञानचक्षुर्नेक्षेत भास्वन्तं भानुमन्धवत् ॥ ६५ ॥

अन्वयः—ज्ञानचक्षुः, सर्वगम्, सच्चिदात्मानम्, निरीक्षते; भानुम्, अन्धवत् अज्ञानचक्षुः, भास्वन्तम्, (आत्मानं), न, ईक्षेत ॥ ६५ ॥

अर्थः—सर्वव्यापी भी सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मा ज्ञान-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

चक्षुओंको अर्थात् ज्ञानरूपी नेत्रवाले पुरुषोंको ही दीखता है; और अज्ञानचक्षु कहिये अनादि अविद्याकरके नष्ट होगए हैं ज्ञानरूपी नेत्र जिनके ऐसे पुरुषोंको प्रकाशमान् साक्षी आत्मा इसप्रकार नहीं दीखता है, कि जिसप्रकार सर्वगत प्रकाशवान् भी सूर्य अन्धे पुरुषको नहीं दीखता है ॥ ६५ ॥

तहाँ शङ्का होती है कि-ज्ञानदृष्टिवाले पुरुषके ज्ञानके बलसे यद्यपि देह-इन्द्रियादि विषयोंमें अध्यासलक्षण मल दूर हो जाते हैं, परन्तु पूर्वजन्मके अध्याससे संसाररूपी वास नाके वशमें होकर 'अहम्-मम' इत्यादि देहके अभिमानरूप बन्धनकरके युक्त होना तौ प्रतीत होता है; फिर उसकी आत्मस्वरूपमें स्थित होकर, विदेहकैवल्यरूप मुक्ति किसप्रकार हो सक्ती है ? तहाँ कहते हैं कि-

श्रावणादिभिरुद्दीप्तो ज्ञानाग्निपरितापितः ।
जीवः सर्वमलान्मुक्तः स्वर्णवद्द्योतते स्वयम् ६६

अन्वयः-श्रवणादिभिः, उद्दीप्तः, ज्ञानाग्निपरितापितः सर्वमलात्, मुक्तः, जीवः, स्वयम्, स्वर्णवत्, द्योतते ॥६६॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अर्थ—श्रवणादि कहिये श्रवण-मनन-निदिध्यासन-करके, उत्पन्न हुई, अति उत्कृष्ट प्रकाशवान् ज्ञानरूप अग्निकरके परितापित (युक्त) इसकारणही दग्ध हो गये सम्पूर्ण मल जिसके ऐसा जीव सुवर्णकी समान स्वयं प्रकाशवान् होता है, तब उसको 'अहम्-मम' इत्यादि किसीप्रकारका भी अभिमान नहीं रहता है ॥ ६६ ॥

तहाँ कहते हैं कि—इसप्रकार शुद्ध हुआ आत्मा किस रूपका होता है ? और कहाँ उदयको प्राप्त होता है ? तथा किसको प्रकाशित करता है ? तहाँ कहते हैं कि—

हृदाकाशोदितो ह्यात्मा बोधभानुस्तमोऽपनुत् ।
सर्वव्यापी सर्वधारी भाति सर्वं प्रकाशते ॥ ६७ ॥

अन्वयः—हि, हृदाकाशोदितः, बोधभानुः, आत्मा, तमोऽपनुत्, (भवति); सर्वव्यापी, सर्वधारी, भाति, सर्वम्, प्रकाशते ॥ ६७ ॥

अर्थ—इसप्रकार जीवात्मा और परमात्माकी एकताके ज्ञानसे शुद्ध हुआ, हृदयरूपी आकाशमें उदित हुआ निर्मल बोधस्वरूप सूर्य अज्ञानरूपी अन्धकारको नष्ट करता है;

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तहाँ शंका होती है कि—हृदयाकाशके परिच्छ होनेसे वहाँ उदयको प्राप्त होनेवाला आत्मा भी परिच (नाशवान्) हो जायगा ?

तहाँ कहते हैं कि—आत्मा तौ सर्वव्यापी है और सर्वाधार अर्थात् अज्ञानका कार्य जो जगत् उसक अधिष्ठानरूप है, अर्थात् भ्रमसे प्रतीयमान हृदयाकाश सर्वव्यापक आत्माका हानिकारक नहीं होसकता. क्योंकि, आत्मा सबका प्रकाशक नित्यस्वरूप है ॥ ६७ ॥

अब सम्पूर्ण पुरुषोंके आत्मस्वरूप तत्त्वको तीर्थरूपसे वर्णन करते हैं, क्योंकि इस तीर्थके सेवनका फल सर्वो-परि है, और ६६ वें श्लोकमें ज्ञानीको सर्वमलमुक्त सुवर्ण की समान वर्णन किया है. तहाँ शङ्का होती है कि, स्वा-भाविक पाप दूर करनेके अर्थ ज्ञानी भी प्रयाग-आदि ती-र्थोंमें यात्रा करता है, फिर सर्वमलमुक्त सुवर्णकी समान किसप्रकार हो सकता है ? उसका समाधान करते हैं कि—

दिग्देशकालाद्यनपेक्षि सर्वगं शीतादिहृन्नित्य-सुखं निरञ्जनम् । यः स्वात्मतीर्थं भजते विनि-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ष्क्रियः स सर्ववित्सर्वगतोऽमृतो भवेत् ॥ ६८ ॥

अन्वयः—यः, विनिष्क्रियः, दिग्देश[illegible]लाद्यनपेक्षि, [illegible]गम्, शीतादिहृत्, नित्यसुखम्, निरञ्जनम्, स्वात्मतीर्[illegible], भजते, सः, सर्ववित्-सर्वगतः-अमृतः, भवेत् ॥६८॥

अर्थः—जो सर्व प्रकारकी क्रियाओंकरके रहित ज्ञानी [illegible]ुरुष एकाग्रचित्त होकर, पूर्वादि दिशा और वैकुंठ-कैलासादि देश तथा भूत भविष्यत् वर्तमानकालकी अपेक्षारहित, सर्वव्यापक, और शीतादिक हरण करनेवाले अर्थात् शीतोष्णादि द्वन्द्वोंके नाशक, नित्यसुखरूप और निरंजन कहिये मायाके कार्य जगत्रूप मलसे रहित, आत्मतत्त्वरूप तीर्थको सेवन करता है, अर्थात् विचार-सेवन-मनन आदि करता है, अर्थात् जो पुरुष सम्पूर्ण कर्मोंको त्यागकर, आत्मतत्त्वरूप तत्त्वका विचार करता है, वह सर्वज्ञ और सर्वव्यापक तथा अमृत कहिये मुक्त होकर ब्रह्मरूप हो जाता है. इसकारण मुमुक्षु पुरुषोंको आत्मतत्त्वरूपी तीर्थका सेवन करना अत्यन्त आवश्यक है; सोई महाभारतके विषे कहा है कि—" आत्मा नदी संयमतो-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection